मंजरी

स्त्री के मन की

अप्रैल 2016

अंक - 8

बागवान

परिवार में पिता की बदलती भूमिका

दूध से हमने किया तैयार
हंसता-खेलता बिहार

सुधा
श्वेत समृद्धि

COMFED
बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
E-mail : comfed.patna@gmail.com, www.sudha.coop

सुधा
का नया UHT एलेकस्टर दूध पैक, बिना फ्रिजिंग
रहे अब 90 दिन तक, शुद्ध और ताजा

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि. www.sudha.coop

Sudha
An alliance
with healthy life

Bihar/Jharkhand's No.1 Dairy brand
Sudha
सेहत, स्वाद, अनगिनत खुशियाँ

COMFED BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LTD.
E-mail: comfed.patna@gmail.com, Website: www.sudha.coop

SHAHAD

ये दूध नही दम है,
पियो जितना कम है।

Sudha
सेहत,स्वाद,अनगिनत खुशियाँ

Best Brand Best Milk

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
E-mail : comfed.patna@gmail.com www.sudha.coop

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.

उत्कृष्टता, आनंद और सफलता का उत्सव

हम आज जिस मुकाम पर हैं उसका सारा श्रेय हमारी कर्मठ श्रमशक्ति को जाता है। सतत विकास के माध्यम से उत्कृष्टता की खोज करने में नवाचार और प्रतिभा के क्षेत्र में हमारे समर्पित पेशेवर ही हमें दूसरों से आगे रहने में सक्षम बनाते हैं। आज पावरग्रिड के पास पारेषण क्षेत्र और ग्रिड प्रबंधन में सर्वश्रेष्ठ प्रतिभावान लोग कार्यरत हैं। हम गौरवशाली powergridians, ऊर्जा के पारेषण द्वारा लाखों लोगों के जीवन को सशक्त बनाते हैं। अतः, उत्कृष्टता और आनंद के साथ, वैश्विक स्तर पर पारेषण के क्षेत्र में अग्रणी बनने और अधिक से अधिक ऊर्जा के साथ भारत की सेवा करने हेतु हम, ***powergridians* सदैव प्रतिबद्ध हैं।**

पावरग्रिड नेटवर्क, संक्षेप में

- विद्युत पारेषण के माध्यम से राष्ट्र को जोड़ना
- भारत की प्रमुख विद्युतीय ऊर्जा पारेषण कंपनी
- वैश्विक स्तर पर पाँचवी सबसे तेज प्रगतिशील विद्युत कंपनी
- भारत के अंतर्राज्यीय और अंतर–क्षेत्रीय विद्युत पारेषण प्रणाली के 90% से अधिक का स्वामित्व और संचालन
- 1994 के बाद से प्रदर्शन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भारत सरकार द्वारा "उत्कृष्ट" रैंकिंग प्रदान की गई
- पावरग्रिड की पारेषण प्रणाली की उपलब्धता 99% से अधिक
- देश में उत्पन्न बिजली की 46% से अधिक का पारेषण पावरग्रिड के नेटवर्क द्वारा

पावरग्रिड

एक 'नवरत्न' कंपनी

एक राष्ट्र ग्रिड फ्रीक्वेन्सी

पंजीकृत कार्यालयः बी-9, कुतुब इंस्टीटयूशनल एरिया, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016 फोन नं: 011-26560122, फैक्सः 011-26601081
कॉर्पोरेट कार्यालयः 'सौदामिनी', प्लॉट नं. 2, सेक्टर-29, गुड़गांव, हरियाणा-122 001 (भारत) फोन नं: 0124-2571700-719, फैक्सः 0124-2571762,
ई–मेल आईडीः powergrid@powergrid.co.in, सीआईएनः L40101DL1989GOI038121, www.powergridindia.com

संकल्पना

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी कोशिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवे. दनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामाजिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

संपादकीय

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र पटना विवि

प्रो. डेजी नारायण
प्रोफेसर, इतिहास, पटना विवि

परामर्श

मनीष कुमार
ब्यूरो चीफ, एन.डी.टी.वी. बिहार

कीर्ति
सीनियर कंसल्टेंट, कैरीटास (CARITAS) बिहार

डा. शरद कुमारी
प्रोजेक्ट ऑफिसर, एक्शन एड

सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
लेखिका

बच्चों की परवरिश में मां के साथ–साथ पिता का स्थान भी उतना ही महत्वपूर्ण है। आपने देखा होगा कि किस तरह बच्चे अपने पिता को दुनिया का सबसे 'कूल' इंसान बताते हैं। मांएं बच्चों के अधिक करीब होती हैं और उनके दिन भर की जरूरतों को पूरा करती हैं, इसके बावजूद बच्चों के हीरो उनके पापा होते हैं। पापा वे आदर्श होते हैं जिनके जैसे उनके बच्चे बनना चाहते हैं। उनके चलने, उनके बातें करने और उनके कपड़े पहनने के तरीके को बच्चे अपनाना चाहते हैं। जहां तक बच्चियों की बात है तो वे उनकी जिंदगी के पहले 'पुरुष' होते हैं।

हर जगह हर परिस्थिति में बुलबुला फटता ही है। ठीक इसी तरह जब बच्चे किशोरवय में पहुंचते हैं तो उनके 'कूल पापा' काउच में पड़े बूढ़े व्यक्ति बन जाते हैं या ऐसे ही कुछ अप्रिय से हो जाते हैं। नये हीरो, दोस्त और महत्वाकांक्षाएं उन्हें अपने पुराने गरिमामय पद से नीचे कर देते हैं। हालांकि इस सबका पिता पर कोई असर नहीं होता और उनके लिए उनके बच्चे, भले ही वो बड़े हो गए हों, आंखों के तारे बने रहते हैं। यहां कई कारण बताए जा रहे हैं कि आखिर क्यों पिता ही बच्चों के लिए उनके असली हीरो हैं।

माता–पिता वास्तव में बिना शर्त बलिदान की मूर्ति होते हैं। लेकिन जहां मां की भूमिका परंपरागत रूप से व्याख्यायित होती है वहीं पिता के लिए अक्सर पूर्वाग्रहयुक्त धारणाओं को अपना लिया जाता है।

क्या कभी समझने की कोशिश की है कि पिता का प्यार भी कितना निश्छल हो सकता है! जरा सोचें : मां को यह मौका मिलता है कि वो बच्चे को अपने गर्भ में स्थापित करती है। नौ महीने के लंबे समय में मां का गहरा संबंध अपने विकसित होते भ्रूण से हो जाता है। वो अपने बच्चे के लिए ही खाती है, सांस लेती है और उसके नन्हे दिल की धड़कन को भी महसूस करती है। पूरी गर्भावस्था के दौरान मां का जीवन शारीरिक और भावनात्मक दोनों रूप से गर्भ में पल रहे बच्चे के साथ बंध जाता है।

लेकिन पिता का क्या? उनका प्रसंग केवल 'उनके' बच्चे के तौर पर आता है (धुंधली अल्ट्रासाउंड तस्वीरों में दिखने वाले भ्रूण) जो 'उनकी' पत्नी के गर्भ में पल रहा है। फिर अचानक ही उनके हाथों में किलकारियां लेते एक नन्हे जीव को थमा दिया जाता है। फिर भी केवल उस एक क्षण के बाद से ही पिता अपनी पूरी जिंदगी को उस बच्चे के प्यार, सुरक्षा और देखभाल के नाम कर देता है।

बच्चे के जन्म के पहले महीने में उसे संभालने का जटिल काम मां करती है। एकसूत्री काम की तरह उसके पोषण के लिए मां खुद को समर्पित कर देती है, बच्चे को स्तनपान कराना, उसके गीले डायपर को बदलना और उसे सुलाते हुए थपकी देना, 24 घंटे के लिए मां के ये काम तय होते हैं। लेकिन क्या वो पिता नहीं हैं जो नेपथ्य में चट्टान की तरह खड़े रहकर ऐसी परिस्थिति बनाते हैं जिससे मां अपने सारे दायित्वों को भली–भांति निभा पाती है।

परंपरागत रूप से पिता परिवार के लिए रोजी–रोटी चलाने वाले होते हैं। वो ये सुनिश्चित करते हैं कि मां और बच्चे दोनों की जरूरतें पूरी हो सकें, बिलों का भुगतान होता रहे। वे सुरक्षा और संतुष्टि का वो माहौल पैदा करते हैं जिनमें बच्चों का समुचित तरीके से विकास हो सके, वे समझदार बन सकें। वास्तव में तो कई पिता ऐसे भी हैं जो अपने कामों का फल मिलने की अपेक्षा भी नहीं करते और केवल अपने बच्चों को बड़ा होते देखकर संतुष्ट हो जाते हैं। जरा सोचिये उन लाखों पिताओं के बारे में जो दूर देशों में नौकरी करते हैं, या जो सेना में हैं, वे बिना शिकायत किये अपना फर्ज निभाते हैं केवल अपने परिवार के लिए। वो परिवार जिससे मिलने का मौका भी उन्हें कभी–कभार ही मिलता है, उनके पास होती हैं तो केवल अपने परिजनों की यादें या फिर पर्स में रखी उनकी घिस चुकीं तस्वीरें।

क्या आपको याद है वो समय जब अंधेरे कमरे में जाते हुए आपको डर लगा था। तब आपके पिता ने आपको गोद में उठाकर, आपकी गालों को चूमते हुए आपका हौसला बढ़ाया था और आपको कमरे में लेकर गये थे। क्या आपको याद है कि उस समय आपने खुद को कितना सुरक्षित महसूस किया था। हममें से ज्यादातर के पास भी ऐसी यादें हैं जब हमने अपने

हमारी बात

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

सहयोग

सुधा डेयरी
पावरग्रिड कार्पोरेशन
द ऑफसेटर, पटना
बंसल ट्यूटोरियल, पटना
सेज पब्लिकेशन
जीवक हार्ट हॉस्पीटल, पटना
केनरा बैंक
भूषण इंटरनेशनल, पटना
हॉस्पिटो इंडिया, पटना

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612-2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

© इक्विटी फाउंडेशन

पिता को परीक्षा के वक्त अपने पास खड़े पाया था। जब हमारा दूसरी टीम के साथ मैच चल रहा था या जब हमें स्कूल के स्टेज पर प्रस्तुति देनी थी और हम घबराये हुए थे, तब पापा ने ही हमारा हौसला बढ़ाते हुए हमें तैयार किया था।

मांएं बच्चों को प्यार और स्नेह का भाव देती हैं तो वहीं पिता उन्हें सुरक्षा का भाव देते हैं। वे हमारे साथ हमेशा होते हैं, उस चट्टान की तरह जिस पर हम बिना डरे अपनी जिंदगी की इमारत खड़ी करते हैं। चाहे आप कोई शिशु हों जो पहली बार चलना सीख रहा हो या अस्पताल में अपने बच्चे के जन्म की प्रतीक्षा में खड़े घबराये हुए भावी पिता हों, आपके पिता ने कभी आपकी हिम्मत को कम नहीं होने दिया।

हमारे पिता महान शिक्षक होते हैं। वे सिखाते हैं कि साइकिल कैसे चलाएं, पतंग कैसे उड़ाएं या पेड़ पर लगे आमों को कैसे तोड़ें। वे हमें चलना सिखाते हैं, हमें अपने खर्चों को संभालना सिखाते हैं और हमारे पहले बैंक खाते को मैनेज करना सिखाते हैं। सबसे अहम बात, वे उन चुनौतियों से मुकाबला करना सिखाते हैं जो जिंदगी हमारे लिए तैयार रखती है। वे सिखाते हैं कि जब हम गिरें तो उठ जाएं और चलते रहें। उन्हें देखकर ही हम सीखते हैं कि हमें दूसरों के साथ कैसे संबंध बनाने चाहिए क्योंकि लोग हमेशा अच्छे ही नहीं होते। पिता हममें आत्मविश्वास भरते हैं, हमें अपने लक्ष्यों की पहचान करना सिखाते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए हमें हिम्मत और उत्साह से भर देते हैं। वे अपने जीवन से हमें सीख देते हैं, जो ईमानदारी और मेहनत पर टिका होता है।

सबसे बड़ी बात, वे ही हमें दायित्व का सही अर्थ समझाते हैं जब हम खुद अपने बच्चों के मां–बाप बनते हैं।

Nsrivastava

नीना श्रीवास्तव

अतिथि संपादक

गहरा है पितृत्व का अहसास

प्रो. राजलक्ष्मी श्रीराम

महाराजा सायाजी राव बड़ौदा विश्वविद्यालय के मानव विकास एवं परिवार अध्ययन विभाग में एमेरिटस प्रोफेसर राजलक्ष्मी श्रीराम 23 वर्षों से शोध और अध्ययन कार्य में संलग्न हैं।

अस्सी के दशक से मैं महिला सशक्तीकरण और बच्चों की देखभाल जैसे मुद्दों से जुड़ी रही हूं। इन विषयों पर महिला समाख्या, गुजरात के साथ काम करते हुए मैंने गौर किया कि गांवों में चलाए जाने वाले बच्चों की देखभाल से जुड़े वे कार्यक्रम अधिक सफल होते थे जिनमें पुरुषों की भागीदारी ज्यादा होती थी बनिस्पत उन कार्यक्रमों में जिनमें पुरुष कम संख्या में शामिल होते थे। साथ ही वहां महिलाएं ज्यादा स्वतंत्र होकर अपनी राय रख पाईं और आपसी विवादों को सुलझाने के लिए उत्सुक दिखीं।

पिता की भूमिका और महिला सशक्तीकरण

इसी तरह मानव विकास विभाग के अपने छात्र–छात्राओं के साथ परिवार, जेंडर और बच्चों की परवरिश जैसे मुद्दों पर विमर्श और वाद–विवाद के दौरान प्रायः हर बार हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते थे कि न केवल वैश्विक स्तर पर बल्कि स्थानीय स्तर पर भी परिवार और समाज में महिला की स्थिति और भूमिका में तो सकारात्मक बदलाव आए हैं मगर पुरुषों की स्थिति और भूमिका में बहुत कुछ सकारात्मक आ पाना अभी बाकी है। इसके अलावा ग्रामीण महिलाओं और शहरी छात्राओं के साथ अब तक के अनुभवों से यह भी साफ हो चुका था कि महिलाओं और पुरुषों में जैविकीय भिन्नताएं अवश्य हैं लेकिन जेंडर की अवधारणा समाज द्वारा गढ़ी गई है। तो ऐसे में जब महिलाएं बदल सकती हैं तो पुरुष क्यों नहीं! इस सवाल ने हमारे सामने एक और सवाल खड़ा कर दिया कि क्या सभी पुरुष एक जैसे हैं और बिल्कुल नहीं बदले हैं? अब समय था अपने व्यक्तिगत अनुभवों को परखने का। इसने पुरुष के वैकल्पिक चरित्रों की छवियां सामने रखीं, जैसे पिता, भाई, चाचा, मामा, दादा (जिनमें मेरा परिवार भी शामिल था), जो सहायक थे, संवेदनशील, उत्सुक और भावनाओं को समझने वाले तथा परिवार और बच्चों के पालन–पोषण में प्रत्यक्ष तौर पर शामिल होने वाले थे। तब हमने पाया कि जिन परिवारों के पुरुष–पिता या पति–सहायक थे, उन परिवारों की स्त्रियां–बेटी या पत्नी–कहीं अधिक कामयाब, सशक्त और और आत्मविश्वासी थीं।

बहरहाल, जब हम बड़े स्तर पर बात करें तो पुरुष की दबंग छवि एक अलग प्रकार से दिखती है – दूरी बनाकर रखने वाला, बच्चों की देखभाल में सक्रिय तौर पर शामिल नहीं होने वाला, हिंसक, दुर्व्यवहार करने वाला और अक्सर शराबी–कुल मिलाकर एक ऐसा व्यक्ति जो परिवार से दूर है फिर भी बीवी–बच्चों के लिए मुसीबतें तैयार करता रहता है। ये सच है कि ऐसी स्थिति कई घरों की है लेकिन हमारे अनुभव इसे हर जगह और हर समय के लिए स्वीकार नहीं करने देते हैं।

इस समय मुझे लगा कि परवरिश पुरुषों को परिवार में शामिल करने का उचित कारण बन सकता है और यहीं से हमने अपने अध्ययन को परवरिश पर केन्द्रित कर लिया। ज्यादातर अध्ययनों में परवरिश में पिता की भूमिका को मां की भूमिका से मिलाकर देख गया है और उसे देखभाल की केवल मौलिक क्रियाओं तक सीमित कर दिया गया है, जैसे–खाना बनाना, बच्चों को खिलाना, सुलाना, नहलाना और अन्य घरेलू कार्य करना। ऐसे अध्ययनों के जो नतीजे रहे वे 'पिता क्या नहीं करते हैं' पर केन्द्रित होकर रह गये। जब हम पारिवारिक लोकतंत्र की बात करते है तो बेशक इन मुद्दों पर बहस होनी भी जरूरी है क्योंकि तभी हम परिवार में पुरुषों की ज्यादा भागीदारी को सुनिश्चित कर महिलाओं का भार कम कर सकते हैं और साथ ही अवैतनिक कार्यों को मूल्यवान बना सकते हैं। लेकिन यदि परवरिश की ज्यादा विवेकपूर्ण अवधारणा को समझने की कोशिश करें तो इसके लिए हमें केवल कुछ घरेलू क्रियाओं को ही नहीं बल्कि उन सभी निवेशों को समझना होगा जो माता–पिता अपने बच्चे में मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक और सामाजिक तत्वों के जरिये करते हैं। इसके लिए मैंने परवरिश को एरिक्सन के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत की दृष्टि से जानने की कोशिश की। मैंने पाया कि उनका सिद्धांत हिन्दू धर्म के गृहस्थ आश्रम पर आधारित है जो बच्चों की देखभाल और उनकी परवरिश को 'धर्म' अर्थात् नैतिक दायित्व के तौर पर देखता है।

गौर कीजिए

ब्रिटिश डॉक्यूमेंट्री सीरिज 'द ह्यूमन माइंड' के मुताबिक एक नवजात शिशु मां और पिता की आवाज पर अलग–अलग प्रकार से प्रतिक्रिया देता है।

अतिथि संपादक

पित की क्षमता : इसे जोड़ने की जरूरत

गंभीर अध्ययनों के जरिये पिता की भूमिका को सबसे पहले दुनिया के सामने रखने वाले माइकल लैम्ब के समय यानी 1976 से लेकर अब तक हमने एक लंबी यात्रा तय कर ली है। अब संयुक्त राष्ट्र ने भी परिवार में पुरुषों की भूमिका का महत्व समझा और 2011 में एक रिपोर्ट प्रकाशित की 'मेन इन फैमिलीज, एंड फैमिली पॉलिसी इन ए चेंजिंग वर्ल्ड'।

हमें देखना होगा कि हम पितृत्व और पिता से क्या अर्थ लगाते हैं। साधारणतया पितृत्व से सामाजिक अथवा वैधानिक स्थिति का भान होता है जबकि पिता से तात्पर्य वे जिम्मेदारियां और देखभाल की क्रियाएं होती हैं जिनकी हम उनसे उम्मीद रखते हैं। यदि केवल जैविकीय संबंध को पितृत्व का आधार न बनाया जाय तो वे सारे पुरुष जो परिवार के पालन–पोषण में अपना योगदान देते हैं, किसी न किसी रूप में पिता का काम ही कर रहे होते हैं। ब्रिडशॉ ने पिता की जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुए चार प्रकार की छवियों को पहचाना है जिन्हें अब पूरी दुनिया में भी समझा जाने लगा है –

जैविकीय पितृत्व : अपने खुद के बच्चे होने की क्षमता और इस प्रकार अभिभावक बनने तथा बच्चों की देखभाल करने की जिम्मेदारी लेना।

सुरक्षात्मक पितृत्व : बच्चों की देखभाल और उनकी सुरक्षा से सीधे तौर पर जुड़ना जो किसी भी संवे. दनशील पुरुष द्वारा किया जा सकता है। ये बच्चे के दादा, चाचा, शिक्षक या बड़ा भाई, कोई भी हो सकता है। हमें यह भी समझना चाहिए कि जो अपने बच्चों से दूर रहने वाले पिता भी उनसे लगातार संपर्क बनाए रखते हैं और अपना मार्गदर्शन और सुझाव देते रहते हैं।

साथी के रूप में साझेदारी : पत्नी को शारीरिक और भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करने की भूमिका में होना तथा बच्चों की शिक्षा, आर्थिक जरूरतों और अन्य विकासात्मक जरूरतों को पूरा करने की प्रक्रिया में सीधे–सीधे शामिल होना।

आर्थिक सहायक : हर स्तर पर आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना। यह उन परिवारों में भी कई बार लागू होता है जहां तलाक के कारण पिता बच्चे से दूर होते हैं।

पिछले तीन दशकों में पिता की अवधारणा में कई उल्लेखनीय परिवर्तन आए हैं। यहां तक कि इस संबंध में स्त्री और पुरुष को एक–दूसरे के विपरीत बताने वाली सोच में भी कमी आई है। अब पिता को पूरक बताने वाली विचारधारा मजबूती से अपना स्थान बनाने लगी है। ये ठीक है कि अभिभावक का सेक्स बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है लेकिन इसका ये मतलब कतई नहीं है कि कोई एक सेक्स ही ज्यादा अहम है या केवल मां का प्रभाव पिता से ज्यादा है। इंसानों में 'देखभाल करने वाला हार्मोन' स्त्री और पुरुष दोनों में समान रूप से पाया जाता है चाहे वो बच्चे के जन्म के पहले हो या बाद में (फादरहुड इंस्टीच्यूट रिसर्च, 2014, प्रुएट 2000)। भारतीय क्लासिकल डांस की विधा नाट्य शास्त्र में भी मनोभावों का निर्माण करने में वात्सल्य (विशेषकर पिता) का महत्व दर्शाया गया है।

पिछले तीन दशकों में पिता की अवधारणा में कई उल्लेखनीय परिवर्तन आए हैं। यहां तक कि इस संबंध में स्त्री और पुरुष को एक–दूसरे के विपरीत बताने वाली सोच में भी कमी आई है। अब पिता को पूरक बताने वाली विचारधारा मजबूती से अपना स्थान बनाने लगी है। ये ठीक है कि अभिभावक का सेक्स बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है लेकिन इसका ये मतलब कतई नहीं है कि कोई एक सेक्स ही ज्यादा अहम है या केवल मां का प्रभाव पिता से ज्यादा है।

एफआई रिसर्च, 2014 में यह बताया जा चुका है कि पुरुष में पितृत्व की भावना का विकास उस समय ही हो जाता है जब वह पहली बार पिता बनता है। शिशु को गोद में लेने के 15 मिनट के भीतर ही पुरुष के भीतर धैर्य, विश्वास (ऑक्सीटोसिन), संवेदनशीलता (कोर्टिसोल) और जुड़ाव (प्रोलैक्टिन) हार्मोन का स्तर बढ़ जाता है। ऐसे में यही सही समय है जब हम परवरिश से जुड़ी पुरानी मान्यताओं की फिर से पड़ताल कर सकते हैं जो बताती है कि बच्चे केवल मां से जुड़े होते हैं या मांएं बच्चों का ध्यान पिता से ज्यादा अच्छी तरह रख सकती हैं।

शैशवावस्था में पिता की भूमिका : जुड़ाव और प्रभाव

राजू (2001) और वर्मा (2006) जैसे विचारकों के मुताबिक, भारतीय समाज में सच्चा मर्द उसे कहा गया है जो अपने बीवी–बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों की देखभाल करता है और उनका दायित्व उठाता है। इस विचार को कई अन्य अध्ययनों द्वारा भी पुष्ट किया गया है। श्रीराम के अध्ययन (1998) जो कि गुजरात के वडोदरा में सरकारी और निजी अस्पतालों में होने वाले प्रसव को आधार बनाकर किया गया था, में कहा गया है कि चुने गए पुरुषों में से 15–30 फीसद पतियों ने प्रसव के पूर्व और

गौर कीजिए

2010 तक पश्चिमी देशों में घर पर रहने वाले पिताओं की संख्या बढ़कर 2.2 मिलियन तक पहुंच गई।

अतिथि संपादक

बाद में अपनी पत्नियों की पूरी देखभाल की जबकि 30–50 फीसद ने इलाज और सुरक्षा संबंधी फैसले लिए। हालांकि केवल 10 फीसद पिताओं ने परिवार नियोजन से जुड़े मुद्दों में रुचि दिखाई।

1998 में शुक्ला और श्रीराम द्वारा वडोदरा में शहरी मध्यम वर्ग, जिनमें पति–पत्नी दोनों कमा रहे हों, पर किये गये एक अध्ययन में पाया गया कि 80 फीसद पिता शिशुओं में होने वाली आम बीमारियों, उनसे देखभाल तथा बचाव, विकास के लिए जरूरी तत्वों और शिशुओं की जरूरतों से पूरी तरह वाकिफ थे। 30–50 फीसद पतियों को बच्चों को दूध पिलाने का सही तरीका मालूम था और वे घरेलू उपचारों को जानते थे। तीन–चौथाई मानते थे कि पिता केवल स्तनपान को छोड़कर शिशुओं से जुड़े हर कार्य में समान रूप से शामिल हो सकते हैं। 60–75 फीसद पिता बच्चों के भोजन और सेहत से जुड़े मामलों में शामिल रहे और उन्होंने उनके साथ संवाद स्थापित करने, आदतों को बनाने और अनुशासन लाने में सक्रिय भूमिका निभाई। हां, वे बच्चों के लिए नियमित की जाने वाली क्रियाओं जैसे, साफ–सफाई या रात में जागने जैसे कामों में अपेक्षाकृत कम शामिल रहे। 50 फीसद पिताओं ने माना कि उन्होंने कभी भी अपने बच्चों को कोई कहानी या लोरी नहीं सुनाई और न ही बीमारी की हालत में उनकी समुचित देखभाल की। भारतीय पिताओं पर फिल्मों का भी बड़ा असर देखा गया है, जैसा कि कक्कड़ ने 1996 और 2010 में पाया कि इनके प्रभाव से मध्यमवर्गीय पिताओं ने अपने बच्चों की ज्यादा देखभाल और चिंता करना शुरू किया।

यह जानना महत्वपूर्ण है कि पिता का व्यक्तिगत चरित्र और बच्चे को दिया गया उसका समय उतना मायने नहीं रखते जितना कि बच्चे के प्रति उसकी संवेदनशीलता और दायित्व की भावना। कनाडा के डॉसेट द्वारा 2006 में किये गये एक अध्ययन में इस बात पर जोर दिया गया है कि परवरिश की परिभाषा लैंगिक विभेदों के आधार पर नहीं करते हुए इसमें पिता की विशिष्ट सकारात्मक प्रकृति को शामिल किया जाना चाहिए। वास्तव में पिता भी अपने बच्चों से उतना ही प्रेम करते हैं जितनी की मांएं लेकिन उनके जाहिर करने का तरीका अलग है। बच्चे का पिता के साथ गहरा जुड़ाव उसके मस्तिष्क की संरचना को प्रभावित करता है। यही कारण है कि शिशु के रूप में भी भावनात्मक अहसासों को पहचानने में वे उतने ही सक्षम होते हैं। पिता के साथ खेल के दौरान वे अपने भावों को नियंत्रण में रखना सीखते हैं। इसी तरह जो बच्चियां पिता के साथ खेलती हैं वे शारीरिक रूप से ज्यादा फिट होती हैं और उनका आत्मविश्वास व मानसिक स्तर उच्च होता है। पिता के साथ ज्यादा जुड़े रहने वाले छह माह के बच्चे परीक्षण में अधिक अंक पा सके।

बचपन में पिता की भूमिका : सामाजिक व भावनात्मक विकास

बच्चे के विकास की इस अवस्था में पिता की भूमिका कई रूपों में सामने आती है। वर्ष 2008 में संधू और श्रीराम द्वारा मध्यम वर्ग के स्कूली बच्चों के 240 पिताओं पर अध्ययन किया गया जिसमें पाया गया कि 65 फीसद पिता बच्चों के साथ उदार रूप से जुड़े हुए थे जबकि 18 फीसद की अत्यधिक सक्रियता रही और 17 फीसद की कम सक्रियता रही। पिता बच्चों को सामाजिक रूप से अधिक सक्षम और समर्थ बनाना चाहते थे और उनका लक्ष्य उन्हें अच्छा इंसान बनाना था जिसके लिए वे स्कूल की हर तरह की गतिविधियों में हिस्सा लेते थे। बच्चों की जरूरतों को पूरा करना और उनका मार्गदर्शन करना सबसे अहम दायित्व रहा जिसके बाद व्यवहारिक भावनात्मक सहयोग का स्थान रहा। 2014 में वडोदरा में सैनिकों के परिवारों पर किये गये अध्ययन में यह भी पता चला कि जो पिता अपने बच्चों से दूर थे वे भी उनके बारे में उतने ही चिंतित और सक्रिय रहे। सिंह और श्रीराम के इस अध्ययन में जब पोस्टग्रेजुएट लड़कियों की राय ली गई तो उन्होंने बताया कि पिता ने उनका हर मौके पर पूरा साथ दिया। बेटियों ने पिता के प्यार करने वाले, समझदार और सहयोगी प्रकृति की बात की। उन्होंने पिता को अपना हीरो बताया। दरअसल बच्चों की परवरिश का पिता का तरीका अलग होता है। वे समस्या के समाधान का तरीका अपनाते हैं। पिता के साथ गुणवत्तापूर्ण समय बिताने से बच्चों में अवसाद, डर या अपराधबोध की भावना कम विकसित होती है। पिता बच्चों के साथ खेलने का अलग तरीका इस्तेमाल करते हैं और उनका जोर क्या और क्यों पर अधिक होता है जिससे बच्चे की क्रियाशीलता ज्यादा बढ़ जाती है। पिता के साथ बच्चे का सकारात्मक जुड़ाव उसे सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के दुष्परिणामों से बचाने में कारगर सिद्ध होता है।

गौर कीजिए

2013 तक अमेरिका में सिंगल फादर की संख्या 2 मिलियन तक पहुंच गई थी।

अतिथि संपादक

किशोरावस्था में पिता की भूमिका : नकारात्मक व्यवहार से बचाव

परंपरागत भारत में बच्चा पिता को काम करते हुए देखता है और उसी रूप में उनकी पहचान कर पाता है। पिता की शारीरिक बनावट और उनकी प्रभावशाली आवाज बच्चों के लिए असरदार साबित होती है। मध्य वर्ग के शहरी पिता अपने बच्चों के स्कूली गतिविधियों में शामिल होते हैं और उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। वे अपने किशोर होते बच्चों के दोस्तों के प्रति भी सतर्क होते हैं। बच्चों की परवरिश में अपनी भूमिका के प्रति वे हमेशा सचेत होते हैं और उसे और बेहतर बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं।

बचपन से लेकर किशोरावस्था तक पिता का जुड़ाव बच्चों को अपराध की ओर जाने से रोकता है। जिन किशोरवय बच्चों का पिता से गहरा संबंध रहा वे 80 फीसद तक कम जेल गये और 75 फीसद तक कम अविवा. हित रहे। जैसा कि अहलुवालिया और श्रीराम ने 2009 में और सिंह और श्रीराम ने 2014 में शिक्षित महिलाओं के सर्वे में बताया, पिता अच्छे द्वारपाल होते हैं। दो–तिहाई पिताओं ने शिक्षा और नौकरी के मामले में बेटे–बेटी में भेदभाव नहीं किया। हालांकि उन्होंने चाहा कि बेटियां घर संभालने और घरेलू कार्यों में दक्षता हासिल करें तो ज्यादा अच्छा है।

माता–पिता पर असर

2011 में कौर और श्रीराम द्वारा किये गये एक अध्ययन में 90 फीसद पिताओं ने माना कि पिता बनने की वजह से उनका आत्मसम्मान बढ़ा है। तीन–चौथाई ने कहा कि पिता बनने के बाद से परिवार के प्रति उनकी जवाबदेही बढ़ी है। 2003 में पाल्कोवित्ज ने भी माना कि पिता बनने से काम में सफलता मिलने की दर बढ़ जाती है और सामाजिक मान–सम्मान में भी इजाफा होता है। बच्चे के साथ पिता का भावनात्मक जुड़ाव पिता के काम से जुड़े तनाव को कम करने में सहायक होता है। जो पुरुष पिता, पति और कर्मचारी तीनों की भूमिका में रहे वे ज्यादा स्वस्थ और मानसिक रूप से संतुष्ट रहे।

2003 और 04 में श्रीराम, अली और कार्णिक ने कामकाजी दंपतियों पर अध्ययन किया तो पाया कि जेंडर को लेकर पिता की सोच का असर उनके अभिभावकत्व पर पड़ता है। कामकाजी माता–पिता बच्चों के देखभाल की जिम्मेदारी को साझा करते हैं। जहां तक त्याग की बात है तो 90 फीसद मांओं ने मातृत्व को अपनी प्राथमिकता बताया तो वहीं पुरुषों का अनुपात 40 फीसद रहा। पुरुषों ने बताया कि वे भी अपने बच्चों के लिए बलिदान करना चाहते हैं लेकिन सामाजिक और आर्थिक जिम्मेदारियां उन्हें ऐसा करने से रोकती हैं। अन्य कई अध्ययनों में भी पाया गया कि पिता बच्चों के साथ और ज्यादा जुड़ना चाहते हैं और उनकी शिक्षा व अन्य गतिविधियों में प्रत्यक्ष रूप से शामिल होना चाहते हैं।

कैसे करें पिता की क्षमता का बेहतर इस्तेमाल

अब हमारे पास इस बात को मानने के पुख्ता कारण हैं कि पिता या घर के पुरुषों की भागीदारी पूरे परिवार के विकास के लिए निवेश के समान है। यह न केवल महिला सशक्तीकरण बल्कि बच्चों के लिए भी बेहद जरूरी है। मैं इसके लिए दो और कारण दे सकती हूं, पहला–अगर हम सचमुच बदलाव चाहते हैं तो हमें सभी पक्षों को लेकर चलना होगा। हर संस्था और समाज के हर वर्ग को। लेकिन हमने अभी तक केवल महिलाओं के कार्य और उनकी समस्याओं तथा मां के रूप में उनकी भूमिका को ही तरजीह दी है। दूसरा, यह सही वक्त है अपनी संस्कृति से मजबूती प्राप्त करने का और पुरुषों की जिम्मेदारीपूर्ण नैतिक चेतनाओं को पोषित करने का ताकि सभी के लिए अधिकतम सहायक परिस्थिति का निर्माण हो सके।

निष्कर्ष : आगे की राहें

अब तक के अध्ययनों और प्रमाणों के बाद मैं इस बात को पूरे विश्वास के साथ कह सकती हूं कि पिता की भूमिका में पुरुषों को ज्यादा से ज्यादा जोड़ने से लैंगिक समानता और बाल सुलभ वातावरण बनाने का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। तो क्या इसके लिए कोई एक स्थान या कार्यक्रम है जो पिता को परिवार से जोड़ पाएगा। नहीं! हमें उन सभी कार्यक्रमों और योजनाओं से पुरुषों को जोड़ना होगा जो महिलाओं और बच्चों से जुड़े हैं और सभी प्रोफेशनल व पाराप्रोफेशनल जो उनके साथ काम करते हैं उन्हें भी साथ लेकर चलना होगा क्योंकि पितृत्व शून्य में मौजूद नहीं रह सकता। उदाहरण के तौर पर, पिता संबंधी तत्वों को वर्तमान में चलाए जा रहे स्वास्थ्य कार्यक्रमों से आसानी से जोड़ा जा सकता है या आईसीडीएस और शिशुओं से जुड़े कार्यक्रमों में भी उन्हें शामिल किया जा सकता है।

Rajalakshmi

राजलक्ष्मी श्रीराम

(डिसीप्लीनरी डायलॉग्स ऑन सोशल चेंज : अर्ली चाइल्डहुड, जेंडर एंड थियेटर, के चैप्टर 'हारनेसिंग फादरिंग पोटेंशियल टू इनश्योर चाइल्ड वेल विइंग' से लिया गया, नित्या राव द्वारा संपादित, नई दिल्ली : एकेडमिक फाउंडेशन, 2016)

गौर कीजिए

एक अध्ययन के मुताबिक ज्यादातर पिता ये मानते हैं कि उनके बच्चों ने उन्हें बेहतर पुरुष बनाया।

अनुक्रमणिका

संकल्पना

हमारी बात

– संपादकीय

अतिथि संपादक

– गहरा है पितृत्व का अहसास

प्रो. राजलक्ष्मी श्रीराम

नया दौर

– स्वागत ! नई परंपराओं का

विशेषज्ञ

– कठिन है साझा परवरिश की राह

फ्लेविया एग्नेस

बाधाएं

– चुनौतियां यहां भी, वहां भी

विमर्श

– भूमिका एक पिता की

प्रो. विभूति पटेल

मेरा पितृत्व

बदलाव

– पितृत्व अवकाश : संकोच कैसा

प्रभाव

– अलग होता है पिता का व्यक्तित्व

मुहिम

– मेन केयर : एक अभियान पुरुषों के नाम

विमर्श

– बदल नहीं सकता पिता का स्थान

विचार मंच

सलाम

– फादर्स डे : पिता को सम्मान

श्रोत

http://greatergood.berkeley.edu
http://timesofindia.indiatimes.com
http://www.bbc.com
http://www.thenational.ae
http://fatherhood.hhs. gov
http://www.focusonthefamily.com
http://www.jaagore.com

स्वागत! नई परंपराओं का

प्रकृति ने मर्द और औरत को जो तोहफे अपनी तरफ से दिए थे वे तो आज भी वही हैं लेकिन बीतती सदियों के साथ समाज द्वारा नियत उनकी भूमिकाएं विस्मयकारी ढंग से बदल गई हैं। लिंग के आधार पर जिसके लिए जो स्थान तय किए गए थे, वे स्थान अब अपने स्थानों से खिसकने लगे हैं। मां और पिता, सृजन की इन दो धुरियों के बीच घूमती आज की दुनिया भावनाओं और दायित्वों के नए समीकरणों से गुजर रही है जो पहले के मुकाबले ज्यादा परिपक्व और स्वीकार करने योग्य है।

स्त्री और पुरुष तब तक अलग–अलग व्यक्तित्व होते हैं जब तक वे मां–बाप नहीं बन जाते हैं। जैसे ही उनके बीच एक बच्चा आता है, वे दोनों मिलकर एक ऐसा केन्द्र बन जाते हैं जिसकी परिधि में बच्चे की सारी दुनिया सिमट जाती है। बच्चे की आकांक्षाएं, उसकी जिद, उसके रुठने और मनाने का पूरा उपक्रम उसी केन्द्र के चारों ओर चक्कर काटने लगता है। ऐसे में उस केन्द्र यानी मां–बाप को सतर्क, क्रियाशील और संतुलित बने रहना बेहद जरूरी है।

एक लंबे दौर से पिता परिवार के केन्द्र रहे हैं और बच्चे–स्त्री सभी की इच्छाएं और क्रियाएं पिता की इच्छा और अनिच्छाओं पर आधारित होती रही हैं। यह स्थिति भारत ही नहीं बल्कि अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देशों में भी है जहां पिता बच्चों से जुड़े तमाम फैसले लिया करते हैं। बच्चों को क्या पढ़ाना है और उन्हें कैसे सामाजिक बनाना है, इन्हें तय करना पिता की जिम्मेदारी मानी जाती रही है। हालांकि मौजूदा सदी में इसमें बड़ा बदलाव आया है और घर की महिलाएं भी बच्चों के हित में फैसले लेने लगी हैं। बल्कि कहा जाए तो समाज के एक बड़े वर्ग में मांएं ही बच्चों का केंद्र बन गई हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है उनका शिक्षित और आत्मनिर्भर बनना। एक समय जहां यह समझा जाता था कि महिलाएं बच्चों के संबंध में सही निर्णय नहीं ले पाएंगी वहीं अब मांओं को पता है कि उनके बच्चों के लिए क्या सही है और क्या नहीं।

90 के दशक में भारतीय समाज में उल्लेखनीय परिवर्तन आने शुरू हुए। ये वो समय था जब पिताओं की स्थिति को एक अलग नजरिये से देखा जाने लगा। पहले जहां पिता की जिम्मेदारी बच्चों में केवल आत्मानुशासन और विवेकपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना मानी जाती रही थी वहीं अब उनकी व्याख्या मां के सहायक और बच्चों के दोस्त के तौर पर की जाने लगी। 'ए फादर्स टच' और 'कैन फादर्स बी बेटर मदर्स' गवाह बने उस दौर के बदलाव का जो परिवार और बच्चों के पालन में पिता के स्थान को लेकर महसूस की जाने लगी थी। समाजीकरण की बदली प्रक्रिया के कारण बच्चा माता–पिता के लिए सबसे प्रमुख केन्द्र बनकर उभरा। विशेषकर मध्यम वर्ग में मां–बाप अपने बच्चे का भविष्य सुरक्षित और उज्ज्वल बनाने के लिए अत्यधिक तत्पर रहने लगे और इसमें पति और पत्नी दोनों की ही भूमिका महत्वपूर्ण होने लगी। 2011 में एसोसिएशन फॉर चाइल्डहुड एजुकेशन इंटरनेशनल द्वारा मुंबई, बड़ौदा और जयपुर के शहरी इलाकों में कराए गए एक अध्ययन में बताया गया कि बच्चों की देखभाल और उनके विकास में पिताओं की भूमिका में काफी बदलाव आया है। आज के पिता अपने बच्चों की जरूरतों के प्रति ज्यादा जागरूक हैं और वे उनके दोस्त, शिक्षक और गाइड की

गौर कीजिए

2007 में हुए एक अध्ययन में पाया गया कि 62 फीसद लोगों ने माना कि घर को साझा रूप से चलाना ज्यादा अच्छा है।

भूमिका भी साथ–साथ निभा रहे हैं। इतना ही नहीं बच्चों के स्वास्थ्य का ध्यान रखना और उनकी भावनाओं की कद्र करना भी पिता अब अपनी ड्यूटी समझने लगे हैं।

रेबेका वर्जर द्वारा पिता की भूमिका पर किए गए शोध 'दि चेंजिंग रोल्स एंड एक्सपेक्टेशन ऑफ फादर्स थ्रू थ्री जेनरेशन' में समाज में पिता के बदलते रोल के बारे में बताया गया है। कैब्रेरा, टैमिस–ले मोंडा, ब्रैडले, हॉफर्थ और लैम्ब (2000) ने 21वीं सदी में पिताओं की भूमिका और उनसे अपेक्षाओं में चार अहम ट्रेंड की चर्चा की है। पहला, जो सबसे प्रमुख भी है, बड़ी संख्या में मांओं का नौकरीपेशा होना। पहले जहां केवल पिता ही परिवार की आर्थिक व्यवस्था को संभालते थे वहीं अब मांएं भी इस जिम्मेदारी को संभालने लगी हैं। ऐसी स्थिति में पिता से अपेक्षाएं बढ़ जाती हैं। महिलावादियों का स्पष्ट कहना है कि जब महिलाएं भी पुरुषों की तरह नौकरी कर रही हैं तो फिर बच्चे और घर संभालने की जिम्मेदारी केवल उनकी कैसे हो सकती है। हालांकि दीगर है कि जितनी संख्या में मांएं घर से बाहर निकल रही हैं, उतनी संख्या में पिता घर और बच्चों का दायित्व संभालने में सहयोग नहीं कर रहे हैं। ऐसा करने वाले पिताओं की संख्या अभी भी बहुत कम है। विचारकों ने जिस दूसरे ट्रेंड की चर्चा की है, वह है बिना पिताओं के परिवार की संख्या में बढ़ोतरी। हालांकि अब तक यह ट्रेंड पश्चिमी देशों में ही अधिक स्पष्ट रूप से सामने आता रहा है लेकिन अब भारत में भी ऐसे परिवारों की संख्या बढ़ी है। इसका प्रमुख कारण है तलाक। देश में तलाक लेने वाले जोड़ों की संख्या में काफी तेजी से उछाल आया है। चिंतकों का मानना है कि पिता की परवरिश के बिना बढ़ने वाले बच्चों की सामाजिकता में कई प्रकार की कमियां देखने को मिलती है। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने वर्ष 2004 में अपने एक भाषण में इस समस्या को गंभीरता से लेते हुए कहा था कि पिता के बिना सही रास्ता दिखाना, पिता के बिना सुरक्षा करना, पिता के बिना लड़कों को अच्छा पुरुष बनने और लड़कियों को पुरुषों का सम्मान करना सिखा पाना बेहद मुश्किल है। चिंतकों ने एक तीसरे ट्रेंड की चर्चा करते हुए कहा है कि आजकल पिता अपने बच्चों की परवरिश और उनकी देखरेख में अत्यधिक रुचि लेने लगे हैं। यह भी एक नई बात है। चौथा और आखिरी ट्रेंड पिताओं की बदली हुई भूमिका के कारण विकसित नए सांस्कृतिक विचलन की ओर इशारा करता है जो न केवल पश्चिमी बल्कि भारतीय समाज में भी साफ तौर पर देखा जाने लगा है।

इसे हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक शोध के माध्यम से देख सकते हैं। 2008 में 8 से 14 वर्ष के बच्चों के 120 मिडिल क्लास पिताओं पर किये गये एक अध्ययन में पाया गया कि 64.2 फीसद पिता बच्चों की देखभाल में अपनी भूमिका को लेकर उदार दिखे। 18.3 फीसद इसमें बहुत ज्यादा सक्रिय रहे जबकि 17.5 फीसद अपेक्षाकृत कम सक्रिय दिखे। ज्यादातर पिता अपने बच्चों की शिक्षा और उनके भविष्य को लेकर चिंतित रहे और उन्होंने बच्चों के मार्गदर्शन में अहम भूमिका निभाई। बुरी संगत से बच्चों को बचाने और उन्हें अच्छा इंसान बनाने के लिए भी पिताओं में उत्सुकता देखी गई। मुख्य बात ये रही कि सभी श्रेणियों में मांओं की सक्रियता पिताओं की तुलना में थोड़ी ही ज्यादा पाई गई। इसी तरह एक अन्य अध्ययन में पाया गया कि किशोरवय बच्चों ने अपने पिताओं के बारे में पूछने पर उन्हें सुरक्षा प्रदान करने वाला, प्यारा और उदार बताया। ऐसे बच्चे बहुत कम मिले जिन्होंने अपने पिता को उपेक्षा करने वाला या ध्यान नहीं देने वाला बताया हो।

लेखक ग्लेन स्टेनटॉन ने इस विषय पर अपने एक प्रभावशाली लेख में पिता की भूमिका की चर्चा की है। वे कहते हैं कि पिता के प्यार करने का तरीका मां से अलग होता है। इस विषय में विशिष्टता हासिल करने वाले डा. केली प्रुएट के मुताबिक, पिता बच्चों के साथ अलग अंदाज में संपर्क स्थापित करते हैं। केवल आठ सप्ताह की उम्र के बच्चे भी मां और पिता के प्यार करने के अलग–अलग तरीके को दिखा सकते हैं। दोनों के संवाद स्थापित करने के सर्वथा भिन्न तरीकों से बच्चों में भी भिन्न लोगों के साथ व्यवहार करने का कौशल उत्पन्न हो जाता है। चाहे उन्हें खुद ये मालूम हो या न हो मगर बच्चे भी अपने अनुभवों से ये सीखते रहते हैं कि पुरुष और स्त्री अलग हैं और जिंदगी से जूझने का उनका तरीका अलग–अलग है। यह समझ बच्चों के संपूर्ण विकास के लिए आवश्यक है।

पिता बच्चों को अधिक जुझारू बनना सिखाते हैं। वे लड़ते हैं, बच्चों को हवा में उछालते हैं और कभी राक्षस बनकर उनका पीछा करते हैं। इन सबके पीछे उनका उद्देश्य बच्चे को मजबूत और बहादुर बनाना होता है। इस बारे में विशेषज्ञ जॉन स्नेरे का मानना है कि जिन बच्चों को पिता के साथ खेलने का मौका मिलता है वे जानते हैं कि मारना, दांत काटना या दूसरों को कष्ट पहुंचाना स्वीकार्य नहीं है। उन्हें खुद को नियंत्रण में रखना आ जाता है और वे जानते हैं कि उन्हें कब कहना है 'बस अब और नहीं'। मां और पिता दोनों का साथ पाने वाले बच्चे उग्रता और संकोच के बीच संतुलन बना पाते हैं। ग्लेन स्टेनटॉन कहते हैं कि यदि आप किसी खेल के मैदान में जाएं तो बच्चे को थोड़ा और आगे बढ़ने, थोड़ा और उपर चढ़ने या साइकिल को थोड़ा और तेज चलाने को कौन कहता है जबकि 'बस रहने दो' और 'संभलकर रहने' को कौन कहता है? जवाब सबको मालूम है। मां बच्चे की सुरक्षा को लेकर चिंतित रहती है जबकि पिता उसे और आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। ये दोनों ही भाव बच्चे के लिए अति आवश्यक हैं और इनमें से केवल एक का मिलना बच्चे के विकास के लिए ठीक नहीं है।

गौर कीजिए

एक सर्वे के मुताबिक 75 फीसद पुरुष और 79 फीसद कामकाजी महिलाएं मानती हैं कि उन्होंने अपने प्रियजनों को पूरा समय नहीं दिया।

विशेषज्ञ

कठिन है साझा परवरिश की राह

बच्चों के संरक्षण और अभिभावकत्व से जुड़े अंग्रेजी कानूनों की शुरुआत इस सिद्धांत से हुई थी कि पिता ही बच्चे के प्राकृतिक अभिभावक हैं। इस सिद्धांत को भारत समेत सभी कॉमनवेल्थ देशों ने अपनाया था जो गार्जियन्स एंड वार्ड एक्ट, 1890 (जीडब्ल्यूए) में झलकता भी था।

1956 में जब हिन्दू कोड बनाया जा रहा था तो हिन्दुओं को इस कानून के दायरे से बाहर रखा गया और उन्हें विशेष दर्जे में रखते हुए हिन्दू माइनॉरिटी एंड गार्जियनशिप एक्ट, 1956 (एचएमजीए) का निर्माण किया गया। बाकी के अल्पसंख्यक समुदायों ईसाई, मुसलमान और पारसी को पूर्व के जीडब्ल्यूए के तहत रखा गया। हालांकि वैवाहिक याचिकाओं के लिए सभी पर्सनल कानूनों में समान सिद्धांत का पालन किया जाता रहा।

यद्यपि सिद्धांततः पिता को बच्चे का प्राकृतिक अभिभावक माना गया लेकिन फिर भी मां की भूमिका प्राथमिक देखभाल के लिए महत्वपूर्ण मानी गई और तलाक की स्थिति में बच्चे का शारीरिक संरक्षण मां को दिया जाने लगा। हालांकि इसे अस्थायी व्यवस्था ही समझा गया। जिन मामलों में मां पर अनैतिकता का आरोप लगा हो या जहां मां ने दूसरी शादी कर ली हो, उन मामलों में उसे बच्चे की कस्टडी प्राप्त करने से वंचित रखा जाता था। हालांकि समान अवस्था में यदि पिता पर बच्चों की उपेक्षा करने, उन्हें मारने–पीटने, अनैतिक व्यवहार करने या दूसरी शादी कर लेने का आरोप लगा हो तो भी उसे उसके प्राकृतिक अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता था। यह स्थिति तलाकशुदा महिलाओं को उनका अधिकार पाने से रोकती थी। इस अन्याय के विरुद्ध "बच्चे का हित सर्वोपरि है" इस न्यायिक सिद्धांत की उत्पत्ति हुई। यह सिद्धांत पिता का बच्चे पर प्राकृतिक अधिकार वाले सिद्धांत में एक छेद के समान था। आज संयुक्त राष्ट्र के बाल अधिकारों के कन्वेंशन (यूएनसीआरसी) पर आधारित इस सिद्धांत को तमाम सीमागत और परंपरागत कानूनों से परे रखकर हर जगह अपनाया जा रहा है। बच्चों के संरक्षण, अभिभावकत्व और उस तक पहुंच को अब माता–पिता के अधिकारों के तहत नहीं रखा जा सकता है बल्कि अब बात बच्चों के परम हित की है। अदालतों को बेहद सतर्कतापूर्वक अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करना होगा ताकि किसी भी बच्चे के उस मौलिक मानवाधिकार का हनन न हो सके जो उसे बिना डर और कष्ट के जीने की आजादी देता है।

वास्तव में यह नीति उससे भी ज्यादा जटिल है जितनी की सामने दिखाई देती है। अगर पिता अमीर हो लेकिन मां के पास आय का कोई स्वतंत्र साधन न हो तो बच्चे का हित किसके साथ होगा? कुछ मामलों में अदालतों ने यह व्यवस्था दी है कि मां के पास आय का जरिया न होने का यह मतलब कतई नहीं है कि उसे बच्चे की कस्टडी नहीं दी जानी चाहिए। पिता की उच्च सामाजिक स्थिति या उसका चरित्र तथा मां का नैतिक आचार, पिता के पक्ष में फैसला लेने के लिए संपूर्ण तथ्य नहीं हो सकते। इन मामलों में केवल एक ही तथ्य मायने रखता है और वह है बच्चे के प्रति दिखायी जाने वाली सुरक्षा और चिंता की भावना। वैधानिक सिद्धांतों में इस बात को भली–भांति अपनाया जा चुका है कि प्रारंभिक दिनों में बच्चे को उसकी मां के प्यार और देखभाल से अलग करना बच्चे के हित में नहीं होगा। इसके अलावा मां को बच्चे का समान रूप से अभिभावक मानने की सोच भी विकसित हुई है और आज के दौर में सभी आधिकारिक कार्यों, जैसे कि स्कूल में नामांकन कराने, बैंक खाता खुलवाने, पासपोर्ट, राशन कार्ड आदि बनवाने में अभिभावक के रूप में मां के अधिकार को भी मान्यता दी जाने लगी है। हालांकि इस स्थिति को पाने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ा है।

फ्लेविया एग्नेस

(लेखिका महिला अधिकारों के लिए काम करने वाली अधिवक्ता और मुंबई स्थित मजलिस लीगल सेंटर की निदेशक भी हैं।)

जहां गैर कामकाजी माताओं को आय के साधन न होने की वजह से डराया जाता रहा है वहीं कामकाजी मांओं को भी एक अलग प्रकार के तनाव से गुजरना पड़ता है। क्या एक महिला जो नौकरी कर रही है और दिन का ज्यादातर समय घर से बाहर बिता रही है, बच्चे की देखभाल कर पाने में सक्षम होगी? हाल के कई मामलों ने इसका भी जवाब दिया है। यह माना गया कि एक मां को केवल इस कारण से कि वह नौकरी कर रही है, बच्चे की कस्टडी से वंचित नहीं रखा जा सकता है। आज के दौर के कस्टडी मामलों में न तो पिता को, जिसे प्राकृतिक रूप से अभिभावक माना जाता रहा है और न ही मां को, जो जैविक रूप से अभिभावक है, को आसानी से बच्चे की कस्टडी दे दी जाती है। बल्कि बच्चे के परम हित को सर्वोपरि मानते हुए घर के माहौल और उसके पालन–पोषण की व्यवस्था को ध्यान में रखा जाता है। साधारणतया अदालतें बच्चे को उसके वर्तमान माहौल से हटा कर गैर कस्टडी वाले अभिभावक के साथ रखने को तरजीह नहीं देती हैं।

जब कोई मामला सामने आता है तो आम तौर पर अदालतें बच्चे को उस अभिभावक के पास ही छोड़ देती हैं जिसके पास वो रह रहा होता है जबकि दूसरे को बच्चे से मिलने की छूट दी जाती है। यहां यह जानना महत्वपूर्ण है कि बच्चे से मिलने की छूट बच्चे के माता–पिता से मिलने के अधिकार के तहत दी जाती है न कि मां–बाप के अधिकार के तहत।

वैवाहिक मामलों को देखने वाली अदालतों, काउंसलरों तथा वकीलों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कस्टडी संबंधी किसी भी केस के केन्द्र में एक बच्चा होता है। चूंकि बच्चा केस की सुनवाई के दौरान मौजूद नहीं होता इसलिए उसकी गैरमौजूदगी में उसके हितों को सुरक्षित रखने का दायित्व कोर्ट का होता है। अदालतें दो पक्षों के बीच की लड़ाई में बच्चे को किसी वस्तु की नहीं देख सकतीं। घरेलू हिंसा के उन मामलों में जहां मां को जबरन घर से बाहर निकाल दिया जाता है, वहां तलाक के बाद बच्चे और मां सबसे ज्यादा

गौर कीजिए

हफपोस्ट व यूगव के सर्वे के मुताबिक 39 फीसद पुरुषों और 34 फीसद महिलाओं ने माना कि उन्होंने अपने परिवार को पूरा वक्त दिया।

विशेषज्ञ

प्रभावित होते हैं। इस स्थिति में बच्चे को अदालत में प्रस्तुत कर बिना भय और आशंका के माहौल में उनकी इच्छा पूछी जाती है। वे किसके साथ रहना चाहते हैं, इस बारे में बच्चे को फैसला लेने को कहा जाता है। लेकिन अक्सर बच्चे अपने पिता के खिलाफ कुछ बोलने की स्थिति में नहीं होते हैं। इसका कारण पिता से उनका डर भी हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में अदालत को व्यावहारिक भूमिका निभाते हुए बच्चे के लिए सुरक्षित और स्नेह भरा माहौल बनाना चाहिए। बच्चों को यह विश्वास दिलाना होगा कि उनके किसी भी फैसले का उन पर या उनकी मां पर बुरा असर नहीं पड़ेगा। बच्चे के हित से जुड़ा सिद्धांत उस समय और भी मुश्किल में पड़ जाता है जब बच्चा खुद घरेलू हिंसा का शिकार होता है या वो अपनी मां के साथ हिंसा को देख चुका होता है। इन मामलों में अत्यधिक संवेदनशीलता की जरूरत होती है ताकि बच्चा दोबारा से सदमे में न चला जाय। ऐसे में कोर्ट पिता को बच्चे से मिलने की आसान छूट न देते हुए थोड़े समय के लिए ही मिलने की छूट दे सकता है जिससे कि बच्चे को पिता के साथ अच्छे संबंध दोबारा स्थापित करने के लिए समय मिल सके। बच्चे की भावनाओं को देखते हुए अदालत इस समय में धीरे–धीरे बढ़ोतरी कर सकती है। हाल के दिनों में ऐसे मामले भी सामने आए हैं जिनमें बच्चे को पिता या परिवार का कोई पुरुष यौन हिंसा का शिकार बनाते हैं। पहले से ही टूट चुके परिवारों में कई बार पत्नी से बदला लेने के लिए बच्चों के साथ ऐसा बर्ताव किया जाता है।

हाल के दिनों में बच्चे की कस्टडी से जुड़े मामलों में आई बढ़ोतरी को देखते हुए लॉ कमीशन ऑफ इंडिया ने साझा परवरिश की अवधारणा को अपनाने के लिए दिशा–निर्देश जारी किये हैं। यह अवधारणा अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और ब्रिटेन जैसे देशों में पहले से ही अपनाई जा रही है। इस धारणा को अपनाए जाने के पीछे जो तर्क दिय जाते हैं उनके मुताबिक अन्य विकसित देशों की तरह भारतीय परिवारों में भी लोगों की भूमिकाएं बदल रही हैं, जैसे कि पुरुष अब घरों में बच्चों को संभालने की जिम्मेदारी लेने लगे हैं। इसके अलावा मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में भी यह बताया गया है कि बच्चे की परवरिश में मां और पिता दोनों का एक साथ शामिल होना ज्यादा अच्छा है बनिस्पत कि केवल मां या केवल पिता के। हालांकि इस अवधारणा को लागू करने से पहले साफ–साफ कहा गया है कि कोई भी सुधार भारतीय संस्कृति, समाज और लैंगिक संबंधों को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए।

लगभग सभी विकसित देशों में तलाक के मामलों में फैसला विवाह संबंधी संपत्ति के बंटवारे के साथ ही होता है। साथ ही बच्चे की कस्टडी पाने वाले को अपने घर में रहने और स्वयं व बच्चे के सुरक्षित भविष्य के लिए वित्तीय सुरक्षा पाने का हक होता है। उन देशों में अलग हुई महिलाओं के लिए सुविधाजनक आश्रय और अकेली माताओं के लिए वित्तीय सुरक्षा दिये जाने का भी प्रावधान है।

मौजूदा कानूनों के तहत बच्चे के 18 वर्ष के होने के बाद उसका साथ देने की जिम्मेदारी से पिता को मुक्त किया जा सकता है। ये वो समय होता है जब बच्चे को सबसे ज्यादा सहारे की जरूरत होती है। जब बच्चा डिग्री कॉलेज में पहुंचता है तो उस समय अकेली मां को उसका साथ देने के लिए छोड़ दिया जाता है। पिता द्वारा बच्चे को इस तरह उपेक्षित और अकेला छोड़ दिया जाना आईपीसी की धारा 317 की तरह कोई आपराधिक कृत्य नहीं माना जाता है जबकि अगर कोई अकेली मां अत्यधिक दवाब के कारण भी बच्चे को छोड़ती है तो उसके खिलाफ प्रावधान बनता है।

इस समय हमारे देश के जो हालात हैं, चाहे वह किसी भी वर्ग में हो, वो ये है कि तलाक या विलगाव गंभीर वित्तीय असुरक्षा की ओर धकेलते हैं। आयकर भरने से किसी की आर्थिक स्थिति का पता नहीं चल जाता है और कई मामलों में तो गुजारा भत्ता को भी कम कर दिया जाता है क्योंकि पत्नी और बच्चे को दुख पहुंचाने के लिए पति अपनी अच्छी खासी नौकरी तक छोड़ देते हैं।

ध्यान देना होगा कि हम जिन विकसित देशों की बात कर रहे हैं वे पहले से ही यह मानते हैं कि माता–पिता दोनों की साझा परवरिश उस स्थिति में बिल्कुल भी ठीक नहीं है जहां किसी एक को दुर्व्यवहार या घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है। साथ ही गुजारा भत्ता नहीं देने को बच्चों की उपेक्षा का मामला बनाया जा सकता है। इसके अलावा साझा कस्टडी केवल उन्हीं मामलों में दी जा सकती है जहां मां और पिता दोनों का व्यवहार दोस्ताना और अच्छा हो। जहां दोनों एक–दूसरे के प्रति दुश्मनी का भाव रखते हों और सहयोग करने को तैयार नहीं हों, वहां बच्चे की साझा कस्टडी नहीं दी जानी चाहिए। ज्यादातर मामलों में बच्चे की कस्टडी बेहद विवादास्पद हो जाती है। ऐसा शहरी धनी परिवारों में अधिक होता है। गंभीरता से जरूरत इस बात की है कि तलाकशुदा महिलाओं और उनके बच्चों को वित्तीय सहयोग मिले जो उनके जीवन को स्थिरता प्रदान कर सके।

गौर कीजिए

सर्वे में कहा गया कि केवल 20 फीसद पुरुषों ने माना कि महिलाओं को घर और बाहर के काम में संतुलन बिठाना मुश्किल है।

चुनौतियां यहां भी, वहां भी

सामाजिक बाध्यताओं से बंधे पिता

बच्चों की देखभाल में मां की भूमिका को बदला नहीं जा सकता है लेकिन उनपर बढ़ती जिम्मेदारियों का बोझ जरूर कम किया जा सकता है। बदलते दौर में महिलाओं की भूमिका भी तेजी से बदली है और अब वे केवल घर संभालने के दायरे से बाहर निकल कर घर की अर्थव्यवस्था को संभालने में भी सक्रिय हो चुकी हैं। ऐसे में घर के पुरुषों की भूमिका बढ़ जाती है। खासकर यदि वे पिता हैं तो उन्हें भी महिलाओं की कई तरह कई कामों को एक साथ संभालने की कला सीखनी होगी। दुनिया के हर कोने में पिता इसे अपना भी रह रहे हैं लेकिन कुछ बाधाएं हैं जो उन्हें ऐसा करने से रोकती हैं।

वास्तविक रोल मॉडल और अपेक्षा की कमी

392 किशोरवय बच्चों के पिताओं पर किये गये एक अध्ययन में पाया गया कि आज के पिताओं के पास रोल मॉडलों की कमी है। उनके अपने पिताओं का उनके साथ संबंध औपचारिक ही था और उनके पिता उनसे भावनात्मक रूप से दूर, काम को लेकर तनावग्रस्त रहने वाले और कम बातचीत करने वाले थे। ऐसे में जब वर्तमान पिताओं से उनके आदर्श के बारे में पूछा गया तो ज्यादातर ने बिल कॉस्बी के मशहूर पात्र क्लिफ हक्सटेबल का नाम लिया जिनके हाथ में अपने बच्चों के लिए सैंडविच और जुबान पर अच्छी सीख हमेशा मौजूद होती थी। ऐसे पात्र को असल जिंदगी में उतार पाना जाहिर है उनके लिए मुश्किल काम है। दरअसल आज के पिताओं को जरूरत है अभिभावकत्व की नई परिभाषा को गढ़ने की। इसके लिए वे अपने पिताओं के अनुभव से सीख ले सकते हैं और जिनसे वे अपने बचपन में वंचित रहे उसे अपने बच्चों के जीवन में पूरा कर सकते हैं।

वैतनिक अवकाश की कमी

ज्यादातर देशों में अब जाकर पिताओं को भी पितृत्व अवकाश दिया जाने लगा है। लेकिन यह भी कई सेक्टरों में लागू नहीं हो पाया है। अब तक कि धारणा यही रही है कि बच्चे के जन्म के बाद उसके लालन–पालन की पूरी जिम्मेदारी मां की होती है और पिता को इसके लिए कोई विशेष समय देने की जरूरत नहीं है। ऐसे में उसे घर पर रहने या बच्चे की देखभाल करने की भी आवश्यकता नहीं है। नतीजतन न तो नियोक्ता का और न ही बच्चे के पिता का अपनी नौकरी से अवकाश लेने की ओर ध्यान जाता है। इसके अलावा पुरुष और महिला के वेतन में भी काफी अंतर होता है और उनके लिए छुट्टी लेकर घर पर रहना नुकसानदायक होता है। ऐसे में यदि पुरुषों के लिए सवैतनिक अवकाश की व्यवस्था हो जाय तो संभवतः वे अपने बच्चों को ज्यादा समय तनावमुक्त होकर दे सकेंगे।

आर्थिक स्थिति भी करती है प्रभावित

सेन फ्रांसिस्को में पिताओं के दो समूहों पर किये गये एक अध्ययन में पाया गया कि

कांटों भरी है मां की राह

गर्भावस्था का पता लगते ही पेशे से पत्रकार अनु (काल्पनिक नाम) को एक ई–मेल आया जिसमें कहा गया कि काम असंतोषजनक होने के कारण उसे नौकरी से हटाया जाता है। मां बनने की पहली सीढ़ी चढ़ते ही अनु को मिलने वाला यह पहला 'तोहफा' था। अनु ने अपनी बर्खास्तगी को चुनौती दी और अदालत को बताया कि गर्भावस्था के दौरान महिला कामगार को मिलने वाली सुविधाओं और सुरक्षा से वंचित रखने के लिए कंपनी ने उसे अवैध तरीके से काम से बाहर निकाला है। अनु ने हौसला दिखाया और अपने नियोक्ता के खिलाफ कोर्ट तक गई लेकिन उसकी तरह हिम्मत दिखाने वाली मांओं की संख्या बेहद कम है। वर्ष 2008 से 2012 तक देश की श्रम अदालतों में मेटरनिटी लीव न मिलने की केवल 900 शिकायतें दर्ज कराई गईं जो वास्तविक संख्या से काफी कम हैं। देश के श्रम कानून के मुताबिक गर्भवती महिला कामगारों को तीन महीने के लिए सवैतनिक अवकाश और नौकरी की सुरक्षा दी जानी चाहिए। हालांकि इस कानून का पालन करने में कंपनियां कोताही बरतती हैं और इससे बचने के लिए बहुधा महिलाओं को बर्खास्त कर देती हैं। जिनमें हिम्मत हैं वो तो चुनौती देती हैं लेकिन ज्यादातर महिलाएं काम छोड़कर घर पर बैठ जाती हैं।

दिल्ली में एक हजार महिला कामगारों पर कराए गए एक सर्वे में पाया गया कि बच्चे के जन्म के बाद केवल 18.34 फीसद शादीशुदा महिलाएं ही नौकरी जारी रख पाती हैं। क्योंकि देश में आज भी बच्चों की देखभाल और उन्हें बड़ा करने की जिम्मेदारी मांओं पर होती है तो उनके सामने अपनी लगी–लगाई नौकरी छोड़ने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता। काम की जगहों पर बच्चों के लिए केश की सुविधा देने वाले नियोक्ता भी गिने–चुने

गौर कीजिए

प्यू के अध्ययन के मुताबिक 1965 के मुकाबले पिता आज अपने बच्चों को तीन गुना ज्यादा समय दे रहे हैं।

बच्चों के साथ पिता का संबंध उनके परिवार की आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करता है। अध्ययन के दौरान पिताओं से पूछा गया कि कोई तीन काम बताएं जो पिता होने के नाते वे अपने बच्चों के लिए करते हैं। इस जवाब के लिए उन्हें तीन साल का समय दिया गया और तीन साल बाद जब दोबारा उनसे पूछा गया तो पहले समूह ने कहा कि वे एक अच्छे पिता हैं क्योंकि अपने बच्चों के साथ वे कीमती समय बिताते हैं जबकि दूसरे समूह का जवाब था कि वे अपने बच्चों के लिए रोल मॉडल बनने की कोशिश कर रहे हैं। यहां पर ध्यान देने की बात है कि दोनों समूह के पिताओं की आर्थिक स्थिति में काफी अंतर था। पहला समूह धनाढ्य था और उनके पास समय की कमी नहीं थी जबकि दूसरा समूह मेहनतकश था और उन्हें दिन का बहुत सारा समय अपनी नौकरी को देना पड़ता था, ऐसे में वे बच्चों के लिए आदर्श पिता बनने की कोशिश का रहे थे।

समुदाय का सहयोग नहीं

आज की भागदौड़ भरी जीवनशैली में लोग दोस्तों को तेजी से खोते जा रहे हैं। एक वक्त था जब बेस्ट फ्रेंड्स के नाम पूछने पर लोग कम से कम तीन नाम तो बता ही देते थ। लेकिन आज के समय में कम से कम 50 फीसद लोग ऐसे मिल जाएंगे जिनके पास बेस्ट फ्रेंड के तौर पर केवल एक नाम होता है। 18 फीसद के पास दो बेस्ट फ्रेंड, 29 फीसद के पास तीन और करीब 3 फीसद के पास एक भी नाम बताने को नहीं होता। इसका असर भी पुरुषों के संबंधों पर पड़ता है। आपस में बातचीत न होने से पुरुष एक पिता के रूप में अपनी भूमिका के बारे में किसी से विचार–विमर्श नहीं कर पाते हैं। इसके अलावे उनके पास रोल मॉडल की कमी भी पिता के तौर पर उन्हें पूर्ण विकसित नहीं कर पाता है।

तलाक के बाद बच्चों की कस्टडी नहीं मिलना

तलाक के ज्यादातर मामलों में पिता को बच्चों को अपने पास रखने का अधिकार नहीं मिलता है। कई बार तो पिता के वकील भी इसके लिए अधिक प्रयास नहीं करते क्योंकि उन्हें लगता है कि बच्चों को पिता की तुलना में मां ही बेहतर संभाल पाएगी। ऐसे में तलाकशुदा पिता बच्चों के साथ गुणवत्तापूर्ण समय नहीं बिता पाते। हालांकि अब कई पिता तलाक के बाद भी अपने बच्चों के साथ समय बिताने को प्राथमिकता देने लगे हैं। वैसे इस काम में उन्हें बहुत सारी परेशानी भी झेलनी पड़ती है। खासकर फैसले लेने के समय बच्चों की मां पूर्व पिता से सलाह लेने को बाध्य नहीं होती और ऐसे समय में पिता को उपेक्षित रहना पड़ता है।

पुरुषत्व का आड़े आना

जब एक युवक और युवती शादी कर लेते हैं तो वे अपनी–अपनी परंपरागत भूमिका का और अधिक गंभीरता से पालन करने लगते हैं। बच्चों के पैदा होने और उनके बड़े होने तक तो पुरुष इस बात को और ज्यादा संजीदगी से मानने लगते हैं कि बच्चों को उनके बजाय अपनी मां से ज्यादा भावुकता रखनी चाहिए और इसलिए वे खुद को जान–बूझकर बच्चों से दूर कर लेते हैं। ध्यान देने वाली बात ये है कि जब भी पिता अपने आप को बदलना चाहते हैं तो उन्हें सकारात्मक प्रतिक्रिया मिलती है। पारिवारिक जागरूकता अभियानों में भी जब पिता शामिल होते हैं तो इसका सबसे अच्छा प्रभाव घर की महिलाओं और बच्चों पर पड़ता है।

ही हैं। सर्वे में यह भी पाया गया कि जिन मांओं के पास परिवार का समर्थन था और जो बच्चों को डे केयर में रखने का खर्च वहन कर सकती थीं उन्होंने भी बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए नौकरी छोड़ देने को प्राथमिकता दी। इसके पीछे बरसों से चली आ रही सामाजिक सोच भी है जो पिता को बच्चों से औपचारिकता बरतने और मां को उससे निकटता रखने की सीख देती आ रही है। इसके अलावा महिलाओं की तुलना में पुरुषों का नौकरी करना अधिक जरूरी मानने की परंपरा रही है। इस मानसिकता के कारण नियोक्ता और परिवार दोनों ही महिलाओं की नौकरी छूट जाने को कोई खास महत्व नहीं देते। जो महिलाएं स्वेच्छा से नौकरी नहीं छोड़तीं नियोक्ता उन्हें कम जिम्मेदारी वाला काम सौंप देते हैं या उन्हें बेवजह परेशान कर काम छोड़ने के लिए दवाब बनाते हैं।

गौर कीजिए

1965 की तुलना में घरेलू काम करने में उनकी सहभागिता भी दोगुना बढ़ी है।

पेरेंटिंग और कार्य

भूमिका एक पिता की

अनमोल क्षण : बेटी लारा के साथ उसके पिता अमर।

प्रो. विभूति पटेल

(पीएचडी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र विभाग प्रमुख, एसएनडीटी वीमेंस यूनिवर्सिटी, मुंबई तथा डायरेक्टर, सेंटर फॉर स्टडी ऑफ सोशल एक्सक्लूजन एंड इनक्लूजन पॉलिसी)

जब मेरी बेटी का जन्म हुआ तो मुझे और मेरे पति के लिए सबसे जरूरी था अपनी व्यस्त जिंदगी को संतुलित बनाना और इसके लिए हमें आपसी बातचीत के जरिये ढेर सारी योजनाएं बनानी थीं क्योंकि हम दोनों के कार्य क्षेत्र चुनौतियों और सामाजिक दायित्वों से परिपूर्ण थे। हमने फैसला किया कि यदि हममें से एक फुल टाइम नौकरी करे और दूसरा फ्रीलांस करे तो मां और बाप में से एक व्यक्ति बच्चे को अपना पूरा समय दे पाएगा। मेरी बेटी का व्यक्तित्व, उसके मूल्य, बौद्धिक सक्रियताएं और उसके पेशागत आचार–विचार, इन सबके पीछे उसके पिता का प्रभाव है जो उसके रोल मॉडल भी हैं। बच्चों की देखभाल के लिए जितनी जरूरत भौतिक सुविधाओं की है उतनी ही जरूरत उनकी भावनात्मक और विकासात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने की भी है। इसलिए मां और पिता दोनों के लिए जरूरी है कि वे बच्चे के साथ अर्थपूर्ण और भावनात्मक रूप से जुड़ें। प्री स्कूल से लेकर कॉलेज तक मेरे पति ने बेटी की प्रगति से संबंधित हर बैठकों और सत्रों में हिस्सा लिया। मेरे पति के अलावा केवल एक और पुरुष जो कि किसी बच्चे के नानाजी थे और जिनकी बेटी और दामाद खाड़ी देश में काम करते थे, स्कूल की बैठकों में अन्य मांओं के साथ मौजूद होते थे।

मेरी बेटी का जन्म 1984 में हुआ था और 1985 से लेकर 1993 तक मुझे देश और देश के बाहर अत्यधिक जाना पड़ता था। 1992 से 1993 के बीच दस महीनों के लिए अपने पोस्ट डॉक्टरल कार्य के दौरान मुझे लंदन में रहना पड़ा। मेरे पति अमर ने मेरी बेटी को संभालने में सबसे अहम भूमिका निभाई जब वो शिशु थी या जब वो स्कूल जाने लगी या जब कभी वो बीमार पड़ी। एक बार भी हमारे दिमाग में बेटी को हॉस्टल में रखने का विचार नहीं आया।

बदलती सच्चाई

परंपरागत रूप से पिताओं को परिवार में फैसले लेने और अनुशासन कायम करने वाला माना जाता है। यदि पिता उग्र स्वभाव वाले हैं तो बहुधा उनके बच्चे विद्रोही बन जाते हैं। ऐसे में भारतीय पिताओं के लिए यह चुनौती है कि वे परिवार में लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाएं और ऐसा करने के लिए उन्हें न केवल बच्चों की रोज की जरूरतों को पूरा करना होगा बल्कि प्यार, सुरक्षा और बौद्धिक तथा मनोवैज्ञानिक जुड़ाव के द्वारा उनकी जिंदगी से संबद्ध भी होना होगा। जब एक बच्चा पिता को तानाशाह के रूप में देखना छोड़ देता है तो वह परिवार में दोस्तीपूर्ण संबंधों की ओर बढ़ता है और बच्चों के साथ बातचीत का माहौल बनता है।

आज के दौर में बहुत कम ही ऐसे पिता हैं जो परिवार के अकेले कमाने वाले व्यक्ति

गौर कीजिए

ह्वाइट हाउस की रिपोर्ट में कहा गया है कि बड़ी संख्या में पुरुष भी अब घर और बाहर के बीच संतुलन नहीं रख पा रहे हैं।

हैं। पिता और मां दोनों की भूमिकाएं बढ़ रही हैं, काम और परिवार के बीच संतुलन बनाए रखना कई नौकरीपेशा अभिभावकों के लिए चुनौती बना हुआ है, परिवारों का आकार छोटा हो गया है और संयुक्त परिवारों का विखंडन हो गया है। यहां तक कि तलाकशुदा दंपतियों में भी पिताओं को अपने बच्चों से मिलने का अधिकार दिया जाने लगा है। पूरी दुनिया के लगभग सभी महाद्वीपों में मैं ऐसे सैकड़ों दंपतियों से मिल चुकी हूं जहां बच्चों की देखभाल के लिए पिताओं ने अपनी अच्छी–खासी नौकरी छोड़ दी है। पहले के समय में ऐसे पिताओं को 'नामर्द' और 'जोरू का गुलाम' कहा जाता था। ऐसे पुरुषों को हतोत्साहित किया जाता था और उन्हें सबसे अलग बताकर सामाजिक कार्यक्रमों में भी हाशिये पर रखा जाता था। लेकिन अब शहरी क्षेत्रों में घर में रहकर बच्चों की देखभाल करने वाले पिताओं की संख्या काफी बढ़ी है और इस कार्य के लिए उनकी इज्जत भी की जाती है।

बच्चों के संपूर्ण विकास में पिताओं की भूमिका पर होने वाली सार्वजनिक बहसों के कारण मेट्रो शहरों के कामी पुरुषों की सोच में बदलाव आया है। कूल, स्मार्ट, आकर्षक और स्टाइलिश लोगों को अब बच्चों की नैपी बदलने, उन्हें लोरी सुनाने, उनका होमवर्क कराने और उन्हें पार्क ले जाने में न कोई झिझक है और न समस्या। आज के पिता कहते हैं कि वे अपने बच्चों के साथ कम से कम उतना समय जरूर बिताना चाहते हैं जितना उनके पिता ने उनके साथ बिताया था। ज्यादा से ज्यादा पिता घरों में अपने बच्चों के साथ रहकर उनकी देखभाल कर रहे हैं।

हमें नहीं भूलना चाहिए कि हरियाणा के गांव से आने वाली कल्पना चावला ने अंतरिक्ष यात्री बनने का सपना देखा था और उनका वह स्वप्न उनके पिता के लगातार सहयोग और प्रोत्साहन के कारण ही पूरा हो सका था। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि बाल्यावस्था में बच्चों के साथ पिता के भावनात्मक जुड़ाव का गहरा असर बच्चों के बाद के विकास पर पड़ता है। परिवार में पिता के सकारात्मक और गहरे जुड़ाव के लिए बच्चों के साथ अर्थपूर्ण संवाद का होना जरूरी है।

पेरेंटिंग पर राज्यों की नीतियां

राज्यों के लिए यह जरूरी है कि वे बच्चों की देखभाल में पिताओं की भूमिका को बढ़ाने के बारे में सोचें और यह स्वीकार करें कि बच्चे के जन्म के बाद पुरुषों को पितृत्व अवकाश न मिलने से महिलाओं को फायदे की बजाय नुकसान ज्यादा होता है। जब बच्चे का जन्म होता है तो मां को मातृत्व अवकाश दिया जाता है जबकि पिता को कोई अवकाश नहीं दिया जाता है। इसके पीछे की मंशा साफ है कि मां को बच्चे की देखभाल करनी चाहिए और इसके लिए उसे घर पर ही रहना चाहिए जबकि पिता के पास कोई विकल्प नहीं होता। वो अपने बच्चे के लिए बमुश्किल समय निकाल पाता है। ये परिस्थितियां महिलाओं को काम से दूर ले जाती हैं या एक कर्मचारी के रूप में उनके एकीकरण को मुश्किल बना देती हैं। काम के घंटों में लचीलापन, दफ्तर से टेलीकम्यूनिकेशन की सुविधा और कार्यालय में महिलाओं और पुरुषों दोनों के बच्चों के लिए क्रेश की सुविधा तथा पार्ट टाइम काम करने का विकल्प पिताओं को भी बच्चों की देखभाल करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। यह कहना कि राज्यों को पितृत्व अवक. ाश के बदले में राशि का भुगतान करना चाहिए, दर्शाता है माता–पिता खुद अपने बच्चे का अहित कर रहे हैं। शिशु केंद्रित मॉडल कहता है कि बच्चे को धरती पर लाने का फैसला मां और पिता दोनों का होता है इसलिए उसकी देखभाल करने की जिम्मेदारी भी दोनों की समान रूप से बनती है। ऐसे में बच्चे के बदले में भुगतान करने की मानसिकता बच्चे के हित के विरुद्ध है। ,

श्रम बाजार में लिंग के आधार पर पारिश्रमिक में भेदभाव

श्रम बाजार पारिश्रमिक और प्रोन्नति के आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव करता रहा है। महिला श्रमिक पुरुषों की तुलना में हमेशा कम पारिश्रमिक पाती हैं। ऐसी स्थिति में जब बच्चे का जन्म होता है तो परिवार मां और पिता दोनों के योगदान की तुलना करता है और पाता है कि यदि मां बच्चे की देखभाल के लिए अपनी नौकरी छोड़ देती है तो नुकसान पुरुष के नौकरी छोड़ने की बनिस्बत कम होगा। इन बाधाओं से पार पाने के लिए कुछ देशों ने अपने यहां परिवारों के लिए प्रोत्साहन के तरीके अपनाए हैं। चिली, इटली और पुर्तगाल में पितृत्व अवकाश अनिवार्य हैं। स्कैन्डिनेवियाई देशों में पिताओं को घर पर रहने की छूट दिया जाना दिलचस्प है। स्वीडन ने भी जेंडर को लेकर निष्पक्ष रवैया अपनाया है और उन दंपतियों के लिए बोनस की व्यवस्था की है जो छुट्टियां समान रूप से साझा करते हैं। स्वीडिश पिता अब कुल पेरेंटल लीव का पांचवां हिस्सा लेते हैं जो कि साझा छुट्टियां घोषित करने के समय करीब शून्य था। नार्वे में जहां पिताओं के लिए कई छुट्टियां तय हैं, दस में से सात पिता अब पांच से ज्यादा सप्ताह की छुट्टियां लेते हैं। जर्मनी ने भी समान पद्धति अपनाई और पाया कि परिवार के लिए छुट्टी लेने वाले पिताओं की संख्या 2006 के 3 फीसद के मुकाबले 2013 में 32 फीसद तक बढ़ गई है। पोलैंड साझा अवकाश को छोड़कर जेंडर कोटा आधारित छुट्टियों को अपना चुका है। फ्रांस उन पति–पत्नियों को बोनस देता है जो बच्चों की जिम्मेदारी को आपस में बांटकर काम करते हैं।

निष्कर्ष

मर्दों को पैसे कमाने वाला और औरतों को बच्चे संभालने वाली मानकर दिया जाने वाला परंपरागत मातृत्व अवकाश न केवल लैंगिक भेदभाव को बढ़ावा देता है बल्कि यह व्यवस्था पिताओं के साथ भी अन्याय करती है क्योंकि उन्हें अपने बच्चों के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ने और उनके विकास में अपना सकारात्मक योगदान देने तथा उनके साथ अच्छा समय बिताने का मौका नहीं दिया जाता है। बच्चों को संभालने का साझा मौका दिये जाने से महिलाओं का पेशागत भविष्य संवरता है, बच्चों का अच्छा विकास होता है और बहुत हद तक पिता को भी जीवन में अधिक संतुष्टि मिलती है। मीडिया को भी घर में रहकर बच्चों की देखभाल करने वाले और खाना बनाने, सफाई करने व अन्य कार्य करने वाले पिताओं की सकारात्मक छवि पेश करनी चाहिए।

गौर कीजिए

हार्वर्ड बिजनेस स्कूल में 25 हजार छात्रों पर हुए सर्वे के मुताबिक ज्यादातर लड़के अपने करियर को लड़कियों के करियर से जरूरी मानते हैं।

मेरा पितृत्व

पिता के लिए बच्चों को पा लेना आसान है बनिस्पत कि बच्चों के लिए सही पिता पाना : पोप जॉन XXIII

मैं उस शर्मिंदगी को नहीं भूल सकता जो 1984 में पटना समाहरणालय में चल रही एक बैठक के दौरान मुझे झेलनी पड़ी (उस समय मैं डीडीसी, पटना के पद पर कार्यरत था), मुझे दिन की शुरुआत में ही झपकियां लेते देखा गया था। चूंकि मैं बैठकों में बेहद सतर्क रहने और लंबी बैठकों के दौरान भी बिना थके ऊर्जावान रहने के लिए जाना जाता हूं, ऐसे में मेरा झपकियां लेना वहां मौजूद लोगों के लिए बड़ा मनोरंजन बन गया। पर मेरे लिए नहीं, क्योंकि उसी साल 16 जुलाई को मेरी पहली संतान, सागर, का जन्म हुआ था। उस दिन के बाद से रात में नन्हे शिशु की हल्की सी आवाज पर भी मैं जाग जाता और मेरा ध्यान तब तक उसी पर लगा रहता जब तक कि वह दोबारा सो नहीं जाता। हालांकि बच्चे को चुप कराने और सुलाने का ज्यादातर काम उसकी मां ही करती थी और मैं घबराता ज्यादा था, फिर भी मैं छोटी–छोटी चीजों में उसकी मदद करता और हर बार पूरे समय के लिए जगा रहता। मीटिंग में जो हुआ वो उसी का नतीजा था। बेशक, यह तो आरंभ था उस मोहपाश का, जो पितृत्व के रूप में मेरे जीवन में शामिल हुआ था और आगे चलकर अगणित अतुल्य अनुभवों की गाथा में समाहित होने वाला था।

पितृत्व का स्वर्गिक आनंद उस दौर में मिलता है जब बच्चे छोटे होते हैं। ये वो दौर होता है जब बच्चों को हम जितना देते हैं उससे कई गुना ज्यादा वे हमें दे देते हैं। सुनने में यह विरोधाभासी लग सकता है लेकिन है बिल्कुल सच। ये ठीक है कि बच्चों का जीवन, उनका विकास माता–पिता द्वारा की जाने वाली देखभाल पर टिका होता है लेकिन हमें भी, शारीरिक न सही, पर अपनी मानसिक जरूरतों को पूरा करने के लिए उनकी जरूरत है। एक लोक सेवक होने के नाते लोगों को न्याय दिलाने की जंग का मेरा तनाव बच्चे की मुस्कान और उसके साथ खेलने से काफूर हो जाता था। जब मैं भोजपुर का डीएम था, और सागर करीब चार साल का था, उस समय उसे कंधे पर गदा लिए, रामायण के श्लोक और हनुमान चालीसा पढ़ते हुए देखना मेरी दिन भर की थकान को दूर करने के लिए काफी होता था। मुझे अभी भी हैरत होती है कि सागर को हनुमान के लिए इतना आकर्षण कैसे हो गया था, क्योंकि उस समय भी हम लोग धर्म के परंपरागत रूप में बमुश्किल ही विश्वास रख पाते थे। (मुझे तो इस बात का भी डर हुआ कि कहीं आगे चलकर वह बजरंग दल में शामिल न हो जाय, एक पिता के रूप में अंतिम चीज जो मैंने उस समय चाही थी और जिस बात को लेकर मुझे अपने पितृत्व पर गर्व है कि मैंने वैसा नहीं होने दिया।) आपके बच्चे के प्यार की केवल एक झप्पी अगले दिन सभी मुश्किलों का सामना करने के लिए आपकी शक्ति को दोगुना कर देती है और आप पहले से भी अधिक प्रतिबद्धता और उत्साह के साथ उनका सामना करते हैं। जिंदगी के इस दौर को न खोएं, ये स्वर्गिक सुख जीवन में दोबारा लौट कर नहीं आएंगे। ये वक्त न केवल आपके बच्चे के भीतर प्यार और स्नेह का वो बीज बोएगा जो भविष्य में उसके व्यक्तित्व को निर्धारित करेगा बल्कि ये आपको भी अपने जीवन में आने वाले उतार–चढ़ाव का सामना करने के लिए सक्षम बनाएगा। पिता के साथ चलने वाले अनगिनत दायित्वों की शुरुआत उसी समय से हो जाती है जब बच्चा विभिन्न प्रकार की चीजों को सीखने लगता है। खासकर वे बातें जो उन्हें अच्छा इंसान बनाने के लिए जरूरी हैं। मेरे अनुभव मजबूती से कहते हैं कि ये सीख स्कूलों में मोरल क्लास पढ़ाए जाने या घर में उन्हें दोहराये जाने से कम और मां–पिता के अपने आचार और व्यवहार से ज्यादा मिलती है। अगर वे मुझे और अपनी मां को अपने दायित्वों के प्रति समर्पित देखकर, अपने मूल्यों को बनाए रखने और समाज के लोगों की मदद करने के लिए चिंता करते देखकर गर्व महसूस करते हैं तो इस सीख को वे अपने जीवन में भी आत्मसात कर लेंगे। ये हो सकता था कि उनके अंदर एक आईएएस के परिवार में पैदा होने का दंभ उत्पन हो जाये, इसलिए विशेषकर मैंने उन्हें अपने ऑफिस के कनिष्ठ कर्मचारियों के साथ ''जी'' कहकर पेश आने की सीख दी। इसके अलावा उनकी परीक्षाओं के समय में अथवा उस जैसे अन्य दिनों में न केवल वे अपने माता–पिता से आशीर्वाद लेते थे बल्कि उनके जन्म के समय से ही घर में काम करने वाले नौकरों से भी वे वैसे ही आशीर्वाद लेते थे। मैं भाग्यशाली हूं कि उन्होंने मेरी बातों को सुना और सीखा और मुझे गर्व होता है जब मैं ये सुनता हूं कि मेरे बच्चे विनम्र और जमीन से जुड़े हैं।

जैसे ही बच्चे माध्यमिक कक्षा के स्तर पर आ जाते हैं, एक

गौर कीजिए

सर्वे में छात्र–छात्राओं दोनों ने कहा कि बच्चे संभालना महिलाओं का काम है।

मेरा पितृत्व

पिता के रूप में उनकी सहायता करने का एक और कठिन समय होता है जब उनका मस्तिष्क चीजों को व्यापक स्तर पर समझने की कोशिश करता होता है। अगर मैं अपनी पढ़ाई में अच्छा कर पाया हूं और एक लोक सेवक के तौर पर उपलब्धियां हासिल कर पाया हूं तो इसके लिए मैं अपने पिता का कृतज्ञ हूं। मुझे अच्छे से याद है कि जब मैं रांची के सेंट जॉन स्कूल में आठवीं क्लास में गया और मेरा सामना गणित के उच्च स्तर के जटिल त्रिकोणमिति के सवालों से हुआ, उस समय मेरे पिता भोर के तीन बजे ही मुझे उठा देते थे और मेरे साथ घंटों बैठकर धैर्यपूर्वक मुझे पढ़ाते थे। उन्होंने मुझे कुछ क्लू दिये थे, वे कभी भी मेरे सवालों का हल नहीं बताते थे बल्कि मुझे उन क्लू के साथ अकेले ही तब तक जूझने देते थे जब तक मैं सही जवाब तक पहुंच नहीं जाता। वे मेरे अंदर 'यूरेका' का भाव जगाना चाहते थे। ये वो सोच और समझ थी जो उन्होंने मुझे आगे बढ़ने के लिए दी थी और जो मुझे हर चुनौती, चाहे वह शिक्षा की हो या नौकरी की, से निकलने के मेरे प्रयासों की नींव बनती रहीं। मेरे पिता से मिले उस विशेष उपहार को मैंने अपने विनम्र तरीकों से अपने बच्चों तक पहुंचाया, हालांकि मैं समझता हूं कि और बहुत कुछ किया जा सकता था जो मैं लोक सेवक होने के कठिन दायित्वों की वजह से नहीं कर पाया।

इस दौर का एक और पहलू है– किशोरावस्था, उसका रोमांच, दवाब और टीवी, कंप्यूटर व मोबाइल के दरवाजे से खुलती पूरी दुनिया, जो किसी भी पिता या अभिभावक के लिए बेहद चुनौतीपूर्ण है। हमारी पीढ़ी से बिल्कुल अलग, आज के किशोरों के कोमल मस्तिष्क को कई श्रोतों से अलग–अलग प्रकार के विचार प्रभावित कर रहे हैं। घर के अंदर या शिक्षकों में से रोल मॉडल भले ही नहीं मिल रहे हों लेकिन एमटीवी में दिखने वाले चरित्र या फेसबुक और ऑरकुट में चैटिंग के जरिये मिलने वाले चेहरों में से, जो हमसे हजारों मील दूर हैं, जरूर मिल सकते हैं। उनका सामने से दिखाई देने वाला ग्लैमर कोमल मन को दुनिया का नकलीपन, उसकी बुराई देखने से रोकता है। हालांकि सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति के बाद पूरी दुनिया के ज्ञान को समझने के लिए विशाल द्वार खुल चुके हैं जो बच्चों को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं जो उन्हें नकारात्कमता से बचाते हुए, परिवार के 'संस्कार' को बनाए रखते हुए उन्हें बता सकता है कि इस ग्लैमर के पीछे का झूठ क्या है और ये भी कि इसके पीछे का पागलपन अंततः उनकी जिंदगी के लिए नुकसानदेह साबित हो सकता है। इस जगह पर, यदि बहुत जरूरी हो तो, पिता की शक्ति को भी इस्तेमाल में लाया जा सकता है लेकिन इसे अंतिम उपाय के तौर पर ही प्रयोग करना चाहिए।

इस दौर को पूरा करने में अभिभावक के तौर पर भले ही हमें कम चुनौतियों का सामना करना पड़ा हो लेकिन अगले ही दौर में चुनौतीपूर्ण कार्य हमारा इंतजार कर रहे थे। जब हम कॉलेज स्तर पर पहुंचे थे तो अपेक्षाकृत कम अनिश्चितताओं से भरे इंजीनियरिंग, मेडिकल और सिविल सर्विस के रूप में सीमित विकल्पों में से चुनाव करना हमारे पिता के लिए आसान था। लेकिन अब प्रबंधन में कई विकल्प हैं तो सूचना प्रौद्योगिकी, अर्थशास्त्र, वित्त, पांच वर्षीय विधि का कोर्स और कई विशेषज्ञता आधारित क्षेत्र, जैसे–फैशन डिजाइनिंग, हॉस्पिटैलिटी, आपदा प्रबंधन और मानव विकास, में से अपने बच्चे के लिए उपयुक्त रास्ता तलाशना आज के पिता के लिए बेहद मुश्किल काम है।

इस नई दुनिया को जानने के लिए मुझे खुद एक छात्र की तरह इंटरनेट को खंगालना पड़ा ताकि कुछ उपयोगी सुझाव मिल सके। मेरे बड़े बेटे का झुकाव लंदन स्कूल ऑफ इकानॉमिक्स से अर्थशास्त्र में मास्टर्स करने की ओर था और इसके लिए वो अपनी एमबीए की पढ़ाई छोड़ना चाहता था। शुरुआत में मुझे उसका यह फैसला व्यवहारिक से अधिक रोमांटिक लग रहा था। लेकिन उसने अपने पिता के अनुभवों और नई दुनिया की जरूरतों को देखते हुए और विशेषकर मेरे दवाब के बिना अपने एमबीए के रास्ते को छोड़कर ये नया रास्ता चुना था, ऐसे में मेरे लिए ये जरूरी था कि उसकी पसंद का सम्मान करते हुए मैं इस क्षेत्र की संभावनाओं के बारे में पता लगाऊं। इंटरनेट के जरिये आपके दरवाजे तक ज्ञान का पहुंच जाना संभवतः वो सबसे सशक्त हथियार है जो आज के पिता को उसके ज्ञान और अनुभवों के परे जाकर बच्चों की रुचि का पता लगाने या उसे सही विषय में व्यस्त करने में मदद कर सकता है।

मेरे दूसरे बेटे के समय में यह अनुभव ज्यादा स्पष्ट होकर सामने आया। कानून की पढ़ाई हाल तक बहुत ज्यादा महत्व नहीं रखती थी। लेकिन नेशनल लॉ स्कूल के रूप में स्थापित किये गए संस्थानों में पांच वर्षीय इंटिग्रेटेड कोर्स ने लॉ की छवि को बदल कर रख दिया। रोजगार के नए अवसर खुले, और विशेषकर वैश्वीकरण के कारण लॉ फर्म, प्राइवेट सेक्टर और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों में नए मौके खुले हैं। चूंकि कानून की पढ़ाई में हुए इन परिवर्तनों से मैं वाकिफ नहीं था इसलिए मुझे एक बार फिर इंटरनेट के गोते लगाने पड़े ताकि अंतिम फैसला लेने से पहले मैं पूरी तरह आश्वस्त हो जाऊं। अद्भुत, मैं कह सकता हूं कि अगर एक पिता को अपने बच्चों का सच्चा दोस्त, फिलॉसफर और गाइड बनना है तो उसे साथ ही साथ एक अच्छा छात्र भी बनना पड़ता है जो हमेशा नई चीजों के बारे में जानकारी लेता रहे और अपने बच्चों के हित में उन्हें सही सलाह देता रहे।

पिता होना एक लंबी यात्रा के समान है। अन्य लोगों की तरह ही मैंने भी इसके दर्द और खुशी, उतार और चढ़ाव, कुछ जाने तो कुछ अनजाने उजाले और अंधेरे को देखा है। लेकिन अंततः जब एक पिता बच्चों को अपने पैरों पर खड़ा देखता है और उन्हें अपनी जिंदगी का मकसद तलाशने के लिए दिमागी और व्यवहारिक तौर पर दुनिया का सामना करने के लिए तैयार होते हुए पाता है तो वह समझता है कि उसका जीवन सार्थक हो गया। ''ये वो पिता है जिसने अपनी जिंदगी के संघर्ष के बाद समाज को एक और सच्चा मानव सौंपा है जो बरसों से चली आ रही मानवता की गाथा को और आगे बढ़ाएगा। इस असाधारण सफलता के आगे उसकी अपनी सभी व्यक्तिगत उपलब्धियां फीकी पड़ जाएंगी।''

मनोज के. श्रीवास्तव

(लेखक 1980 बैच के बिहार कैडर के पूर्व आईएएस अधिकारी तथा शोधकर्ता हैं। यह आलेख टाइम्स ऑफ इंडिया में पूर्वप्रकाशित 'माई फादरहुड' का हिंदी रूपांतरण है।)

गौर कीजिए

मेक्सिको के एक अध्ययन में पाया गया कि 79 फीसद उच्च शिक्षित और 22 फीसद कम शिक्षित मर्द घरेलू काम साझा करने के पक्ष में हैं।

पितृत्व अवकाश : संकोच कैसा?

21 जून को दुनिया भर में 'फादर्स डे' के रूप में मनाया जाता है। इस दिन बच्चे पिता के साथ अपने भावपूर्ण संबंध की खुशी मनाते हैं, वे अपनी जिंदगी में पिता के अपरिवर्तनीय स्थान को स्वीकार करते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि मां की ममता अतुलनीय होती है लेकिन देखा जाय तो पिता के प्यार की भी तुलना नहीं हो सकती। बच्चे के जीवन में पिता के स्थान को किसी और पुरुष द्वारा भरा नहीं जा सकता। पिता के स्थान को अब हर देश में तरजीह दी जाने लगी है और उनके लिए नौकरियों में कई प्रावधान भी किये गए हैं।

स्वीडन उन देशों में अग्रणी रहा जिन्होंने बच्चे के जन्म के बाद पिता को भी वैतनिक अवकाश देने के बारे में सोचा। 1974 में यहां सबसे पहले पितृत्व अवकाश की अवधारणा को विकसित किया गया। लेकिन जब तमाम प्रोत्साहन के बाद भी केवल 6 फीसद लोग ही पितृत्व अवकाश लेने के लिए आगे आए तो 1995 में सरकार एक महीने के पितृत्व अवकाश की योजना के साथ आई और उसके साथ एक चेतावनी भी जोड़ दी कि जो पिता इस अवकाश को ग्रहण नहीं करेगा उसके परिवार को सरकार की ओर से मिलने वाली एक महीने की सब्सिडी नहीं दी जाएगी। वर्ष 2002 में सरकार ने पितृत्व अवकाश को एक महीने से बढ़ाकर दो महीने कर दिया। स्वीडन सरकार की इस दूरदर्शी सोच का ही सुफल है कि आज वहां तलाक और परिवार टूटने के मामले घट रहे हैं जबकि पूरी दुनिया में ऐसे मामलों में तेजी से बढ़ोतरी हो रही है। मनोवैज्ञानिक भी मानते हैं यदि पुरुषों को परिवार और बच्चों की परवरिश से सीधे तौर पर जोड़ा जाय तो इससे पति–पत्नी के बीच के संबंध और प्रगाढ़ होते हैं और परिवारों के टूटने का खतरा कम हो जाता है।

हमारे देश में पितृत्व अवकाश को अभी भी अवांछनीय माना जाता है। बहुत सारे लोगों को तो यह भी पता नहीं है कि भारत सरकार ने सरकारी कर्मचारियों के लिए पितृत्व अवकाश के प्रावधान किये हैं। हालांकि निजी कंपनियां अभी भी इसे अपना नहीं सकी हैं। केन्द्र सरकार की 1999 की घोषणा के मुताबिक, सेंट्रल सिविल सर्विस, लीव, रूल 551 (ए) के तहत केन्द्रीय कर्मचारियों के लिए पितृत्व अवकाश का प्रावधान किया गया है। इसके तहत पुरुष कर्मचारी बच्चे के जन्म के बाद पत्नी व शिशु की देखभाल के लिए 15 दिन का अवकाश ले सकता है। यह अवधि जन्म के ठीक पहले या बाद, कोई भी हो सकती है। यदि इस अवकाश को तय समय में नहीं लिया गया तो इसे समाप्त माना जाता है। यही नियम किसी बच्चे को गोद लेने के समय भी लागू होता है। निजी कंपनियों के लिए छुट्टी का यह नियम अनिवार्य नहीं बनाया गया है बल्कि इसे उनकी इच्छा पर छोड़ दिया गया है। हाल ही में राष्ट्रीयकृत बैंकों ने पुरुषों के लिए वैतनिक अवकाश की घोषणा की है। इसके तहत बच्चे के जन्म के पहले या बाद में पिता को 15 दिन की छुट्टी देने की व्यवस्था है। इसके अलावा कुछ अन्य निजी कंपनियों ने भी इस ओर प्रयास किये हैं। उदाहरण के लिए – भारत की सिसको सिस्टम्स ने पिताओं के लिए 12 सप्ताह के अवकाश की घोषणा की है। कई कंपनियां संकोच के साथ आगे बढ़ रही हैं तों कई अभी भी इस बेहद संवेदनशील मुद्दे से बेपरवाह हैं।

क्या है और देशों का हाल

- दुनिया भर के 96 देशों में बच्चे के जन्म के बाद पिता को अनिवार्य वैतनिक अवकाश दिये जाने का प्रावधान है। कुछ देशों में मां और पिता दोनों को छुट्टियां साझा करने की भी छूट है।
- नार्वे में पिताओं को बच्चे के जन्म के बाद दो सप्ताह का वैतनिक अवकाश दिया जाता है। साथ ही बच्चे के तीन साल की उम्र का होने तक 14 सप्ताह का वैतनिक अवकाश भी दिया जाता है।
- ब्रिटेन में पिता को बच्चे के जन्म के बाद एक से दो सप्ताह का वैतनिक अवकाश दिया जाता है। इसके अलावा यदि मां भी काम पर लौट आती है तो पिता को 26 सप्ताह का अतिरिक्त अवकाश भी प्रदान किया जाता है।
- अमेरिका में न तो पितृत्व अवकाश दिया जाता है और न ही मातृत्व अवकाश। वहां छुट्टी मिलना कंपनी की अपनी इच्छा पर निर्भर करता है।
- आस्ट्रेलिया में राष्ट्रीय न्यूनतम वेतन पर दो सप्ताह का पितृत्व अवकाश देता है। इसके अलावे नए मां–बाप को 52 सप्ताह का साझा अवैतनिक अवकाश लेने की भी छूट है।
- मलेशिया में पितृत्व अवकाश को लेकर कोई विशेष प्रावधान नहीं बनाए गए हैं लेकिन पुरुष सिविल सेवा अधिकारी को 14 दिनों का अवकाश लेने की छूट है।

गौर कीजिए

मेक्सिको के अध्ययन में यह भी पाया गया कि विकासशील देशों में शिक्षा का असर पुरुषों की विचारधारा पर पड़ा है।

अलग होता है पिता का व्यक्तित्व

'' एक पिता सौ शिक्षकों से बड़ा होता है।'' बरसों से चली आ रही यह मान्यता भी सौ फीसद सही है। न केवल परिवार के सही संच. ालन के लिए बल्कि बच्चों की समुचित परवरिश में भी पिता का स्थान कोई नहीं ले सकता है। अब तो अनुसंधान में भी यह साबित हो चुका है कि बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास में पिता का स्थान कितना महत्वपूर्ण है। अध्ययनों से पता चलता है कि छह महीने तक के जिन बच्चों को जन्म के बाद पिता का साथ ज्यादा मिलता है वे अन्य बच्चों की तुलना में कहीं ज्यादा सक्रिय होते हैं और बेले स्केल पर उनका प्रदर्शन बेहतरीन होता है। यह एक ऐसा स्केल है जो 0 से 3 साल तक के बच्चों के प्रदर्शन को मापने के लिए बनाया गया है। शोधकर्ताओं ने कहा कि तीन साल तक होते–होते ऐसे बच्चों का आईक्यू भी अन्य बच्चों की अपेक्षा अच्छा हो जाता है। बताया गया कि बच्चे से बात करने का मां और पिता दोनों का तरीका अलग–अलग होता है। पिता की बातचीत में 'क्या' और 'कहां' जैसे प्रश्न अधिक होते हैं जिनसे बच्चे उत्साहित होते हैं और वार्तालाप में अधिक जिम्मेदारपूर्ण तरीके से शामिल होते हैं। इतना ही नहीं पिताओं का बच्चों के साथ अधिक घुलने–मिलने से न केलव बच्चों का सही भावनात्मक विकास होता है बल्कि यह पूरे परिवार की बेहतरी के लिए अच्छा होता है। ऐसा देखा गया है कि जिन घरों में पति बच्चे के जन्म की प्रक्रिया में ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं उन घरों में जच्चा और बच्चा की मृत्यु दर कम होती है। कानूनी पचड़े कम होते हैं, मारपीट और गाली–गलौज की घटनाएं कम होती हैं, अस्पताल के खर्चे कम होते हैं और परिवार जनों के स्वास्थ्य अच्छे होते हैं। अध्ययनों में बताया गया है कि जहां पिता बच्चों की शुरुआती देखभाल से ही सक्रिय होते हैं वहां पति–पत्नी के बीच संबंध अधिक प्रगाढ़ होते हैं। विशेषकर जीवन के मध्य में वे एक–दूसरे के प्रति ज्यादा संतुष्ट और जवाबदेह होते हैं। पहले बच्चे के जन्म के 10 या बीस साल के बाद भी ऐसे दंपतियों की शादीशुदा जिंदगी ज्यादा खुशहाल होती है।

हमने देखा कि किस तरह वैज्ञानिक शोधों में यह सिद्ध किया जा चुका है कि पिता की सक्रिय भूमिका बच्चे, दंपति और परिवार सभी के लिए कितनी महत्वपूर्ण है। पिता का रोल बच्चे के जन्म के तुरंत बाद से ही शुरू हो जाता है और इसे अधिक सार्थक तथा सक्रिय बनाने की जिम्मेदारी मां की भी होती है। मां को भी पिता पर भरोसा करना होगा ताकि वो बच्चे और परिवार के भविष्य को अधिक उज्ज्वल बना सके।

'चाइल्ड अब्यूज एंड नेगलेक्ट' पर अमेरिकी स्वास्थ्य और मानविकी संभाग द्वारा जारी यूजर मैन्यूएल में बच्चों के संपूर्ण विकास में पिता की भूमिका पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसमें जिन बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है उन्हें हम अलग–अलग तरीके से देख सकते हैं –

मां और पिता के संबंध का बच्चों पर असर : बच्चे के दिमाग पर जिस चीज का सबसे अधिक असर होता है वह है उसके माता–पिता का आपसी संबंध। यदि एक पिता अपने बच्चों की मां का सम्मान करता है और उनका संबंध प्रेम और विश्वास पर आधारित है तो बच्चों पर इसका अत्यंत सकारात्मक असर होता है और यह बच्चों के संपूर्ण शारीरिक और मनोवैज्ञानिक विकास को प्रभावित करता है। ठीक ऐसा ही मां के पिता के साथ संबंधों में भी होता है। ऐसे मां–बाप के बच्चे व्यवहारिक रूप से स्वस्थ और संतुलित होते हैं। इनमें विपरीत लिंग के प्रति सम्मान और आदर की भावना देखी जाती है।

शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव : कई सारे अध्ययनों में यह बात सामने आई है कि जिन बच्चों के पिता ज्यादा ध्यान रखने वाले होते हैं, वे बच्चे स्कूल–कॉलेजों में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। पिता के साथ नजदीकी रखने वाले बच्चों में समझने की क्षमता जल्दी विकसित हो जाती है और वे उच्च इच्छा शक्ति के साथ स्कूल जाने के लिए तैयार होते हैं। वे अधिक धैर्यवान होते हैं और मुश्किल परिस्थितियों से निबटने में ज्यादा सक्षम होते हैं।

सामाजिक व्यवहार और मनोवैज्ञानिक विकास पर प्रभाव : जिन बच्चों को जन्म के बाद से ही पिता का प्यार और समय मिलने लगता है वे अन्य बच्चों की तुलना में अधिक आत्मविश्वासी और सामाजिक होते हैं। वयस्क होने पर ऐसे बच्चे समाज में अधिक आसानी से अपनी जगह बना लेते हैं। जिन बच्चों के पिता उनके रोने पर जल्दी प्रतिक्रिया देते हैं, वे बच्चे ज्यादा सुरक्षित महसूस करते हैं। जो पिता बच्चों को गुणवत्तापूर्ण समय देते हैं, उनके बच्चे अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना सीख जाते हैं और समय के अनुसार खुद को बदलने के लिए भी तैयार रहते हैं। लड़के और लड़कियों पर पिता के साथ और प्यार का अलग–अलग प्रभाव देखने को मिलता है। जहां लड़के पिता से धैर्य रखना सीखते हैं वहीं लड़कियां पुरुषों की इज्जत करना सीख जाती हैं।

पिता का बच्चे के साथ बिताया गया वक्त कितने रूपों में लाभ पहुचाता है इसकी व्याख्या करते हुए लैम्ब ने इसे तीन भागों में बांटा है।

पहुंच : बच्चे के साथ जितना वक्त उसके पापा बिताते हैं उतनी ही बच्चे की उन तक पहुंच आसान हो जाती है। ये पहुंच बच्चे और पिता को और ज्यादा निकट लाने में मददगार होते हैं।

व्यस्तता : बच्चे के साथ समय बिताने के कारण पिता की व्यस्तता बढ़ जाती है और वह सार्थक दिशा में काम आती है।

दायित्व : बच्चे की देखभाल और उसकी जरूरतों को पूरा करने के दौरान पिता को वास्तव में दायित्व बोध होता है जो अंततः पूरे परिवार के काम आती है।

गौर कीजिए

डेनमार्क में हुए एक अध्ययन के मुताबिक 80 फीसद पुरुषों ने प्रसवपूर्व के प्रशिक्षण में रुचि ली।

मुहिम

मेन केयर : एक अभियान पुरुषों के नाम

समुदाय, जिनमें हम रहते और काम करते हैं, उनमें लिंग आधारित हिंसा को समझने के लिए वर्ल्ड विजन ने एक नई मुहिम छेड़ी है जिसे नाम दिया गया है 'मेन केयर'। ये एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत परिवार में पुरुषों की उदारवादी भूमिका को बढ़ावा देने के लिए उदार, अहिंसक, सकारात्मक पुरुषत्व और जेंडर संबंधों को प्रोत्साहन दिया जाता है। जेंडर संबंधी मुद्दों को सामने लाने के लिए उनका मूल्यांकन किया जाना बेहद जरूरी है। मेन केयर मॉडल को आसान बनाने के लिए यह एक तरह से पूर्वाग्रह है। पुरुषों के कुछ समूहों को इसके लिए परीक्षण देकर संवेदनशील बनाया जाता है ताकि वे समुदाय में जाकर जेंडर संबंधी मुद्दों के बारे में समझा सकें।

देश के कई राज्यों में आज भी परंपरागत पुरुषवादी सोच मौजूद है जो लड़कियों और महिलाओं को कमजोर मानते हुए उन पर हावी रहती है और उन्हें महज एक वस्तु की तरह मानती है। घर में उनकी अपनी कोई आवाज नहीं होती, जो काम वे करती हैं उनका कोई मोल नहीं समझा जाता। यहां तक कि वे अपनी जिंदगी को खुलकर जी भी नहीं सकती हैं। जन्म के बाद से ही उन्हें परिवार पर एक बोझ की तरह देखा जाता है और अक्सर कम उम्र में ही शादी के बंधन में बांध दिया जाता है। उच्च शिक्षा पाने का उन्हें कोई मौका नहीं दिया जाता है। इसी सोच का नतीजा है कि स्कूली शिक्षा बीच में ही छोड़ देने वाली लड़कियों की संख्या बढ़ी है। इतना ही नहीं दहेज जैसी सामाजिक कुप्रथाओं से बचने के लिए कई मौकों पर मां–बाप कम उम्र की लड़कियों की शादी उम्रदराज पुरुषों से भी कर देते हैं। महिलाओं के जीवन में स्वीकार्य मानी जा चुकी घरेलू हिंसा की बात करें तो यह एक सीखा हुआ व्यवहार है। बच्चे अपनी मां के साथ किये गये पिता के बर्ताव को देखते हुए बड़े होते हैं और ये मान लेते हैं कि महिलाओं को मारने–पीटने में कोई बुराई नहीं है। जब वे वयस्क होते हैं तो वही करते हैं जो उन्होंने सीखा है। लडके हिंसा करना और लड़कियां उन्हें बर्दाश्त करना जीवन के अभिन्न अंग की तरह स्वीकार कर लेती हैं। बिहार के चार स्थानों पटना, वैशाली, मुजफ्फरपुर और भोजपुर में 'हार्वर्ड एनालिटीकल फ्रेमवर्क' के तहत हाल ही में किये गये जेंडर मूल्यांकन में पाया गया कि यहां की मुख्य समस्याओं में लिंग आधारित भेदभाव, पुरुष प्रधानता, बाल विवाह, बाल श्रम, बालिका भ्रूण हत्या, दहेज, दुर्व्यवहार, घरेलू हिंसा और शराब का सेवन करना शामिल हैं। यह साफ तौर पर दर्शाता है कि जिस समुदाय में हम काम करते हैं वहां महिलाएं और लड़कियां सबसे अधिक असहाय समूह हैं। हालांकि सरकारी प्रयासों तथा एनजीओ एवं अन्य संस्थाओं के दखल से परिवार में महिलाओं के हालात में बदलाव आए हैं और अब कुछ हद तक वे फैसले लेने की स्थिति में आ गई हैं। सामाजिक जागरूकता अभियानों, शिक्षा और स्वयं सहायता समूहों के प्रचार–प्रसार से भी महिलाओं की दशा में सुधार आया है। फिर भी समुदाय के भीतर फैसले लेने की मजबूत स्थिति में आने और संसाधनों पर बेहतर पहुंच व नियंत्रण के लिए और परिवर्तन लाए जाने की जरूरत है। ये तो हम सब जानते हैं कि औरतों के इस हाल के लिए पुरुष प्रधान समाज जिम्मेदार है और महिलाओं और लड़कियों ने भी इसे अपना भागय समझकर स्वीकार कर लिया है। वे इसका विरोध भी नहीं करती हैं। अगर हम वास्तव में इस स्थिति को बदलना चाहते हैं तो हमें पुरुषों को भी यह बात समझानी होगी और उन्हें भी इस सच्चाई को मानना होगा। वर्ल्ड विजन ने इस दिशा में पहल करते हुए पुरुषों को 'चेंज मेकर्स' यानी परिवर्तनकारी बनाने और उनमें जेंडर संबंधी मुद्दों की समझ बनाने का बीड़ा उठाया है। वर्ल्ड विजन ने इसे पायलट प्रोजेक्ट के तहत आगरा में शुरू किया जहां इसे पूरे समुदाय ने अपनाया। इसके नतीजे स्पष्ट और प्रभावशाली तरीके से सामने आए जब पुरुषों ने वर्तमान समस्याओं को चुनौती देते हुए समानता की बात की और उनका प्रसार किया।

ऑल्विन ग्लैडस्टॉन व केरेन पीटरसन

वर्ल्ड विजन के इस प्रमाणित हो चुके कार्यक्रम को बिहार के 30 स्लम क्षेत्रों, 3 ब्लॉक और 15 पंचायतों में शुरू किया गया है और इसकी शुरुआत लैंगिक भेदभाव व घरेलू हिंसा को समझने से की गई है। सभी चार जिलों से 90 पुरुषों को कम्यूनिटी लेवल फैसिलिटेटर्स (सीएलएफ) के तौर पर प्रशिक्षित किया गया है जो अपने–अपने गांवों में इसे आगे बढ़ाएंगे।

प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेने वाले पुरुषों की कुछ प्रतिक्रियाएं

- ''मैं अपनी पत्नी पर हाथ नहीं उठाउंगा और अपने बच्चों को खुश रखूंगा।''
- ''मैंने उन गलतियों को जाना है जो मैं अब तक करता आ रहा था, मैंने उन्हें समझाने का आसान तरीका सीखा है और अब मैं इसका इस्तेमाल दूसरों को जागरूक करने में करूंगा।''
- ''कन्या भ्रूण हत्या का वीडियो देखकर मेरी आंखों में आंसू आ गए, अब मैं हर बच्चे के जीने के अधिकार के बारे में समझ पाया हूं।''
- ''वर्ल्ड विजन द्वारा दिये जाने वाले अन्य प्रशिक्षण से अलग है मेन केयर मॉडल प्रशिक्षण। हमने न केवल इससे बहुत कुछ सीखा है बल्कि इसने हमारी आत्मा को छुआ है और मानव के विकास के लिए इसी चीज की जरूरत है।''

गौर कीजिए

स्वीडन में परवरिश के लिए होने वाले कार्यक्रमों में पुरुषों की भागीदारी अत्यधिक बढ़ी है।

समुदाय द्वारा स्वीकृत मॉडल वो होता है जिसका प्रभाव समुदाय पर तेजी से दिखता हो। इस मॉडल के दखल से हम एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं जो लैंगिक भेदभाव से मुक्त हो जिससे कि महिलाओं और लड़कियों को भी वे सभी अधिकार समान रूप से मिलें जो कि पुरुषों या लड़कों के पास मौजूद हैं। मेन केयर मॉडल के प्रभाव से पुरुषों में शराब पीने की लत में कमी आई है। इसमें लगने वाले धन का इस्तेमाल उत्पादक कार्यों में होने लगा है जबकि लड़कियों पर ध्यान बढ़ा है और बाल विवाह की बुराइयों को समझा जाने लगा है। परिवार में बच्चों की देखभाल व अन्य कामों में पुरुषों का प्रत्यक्ष योगदान बढ़ा है।

वर्ल्ड विजन के 'मेन केयर' कार्यक्रम के तहत चलाए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम में शपथ लेते पुरुष।

आप भी बन सकते हैं 'अच्छे पापा'

बच्चे के साथ मजबूत बांडिंग रहे : सप्ताह में कम से कम एक दिन पापा अपना समय बच्चे को दें। लेकिन इस दिन बच्चों को टीवी न देखने दें क्योंकि इससे आप दोनों के बीच संवाद स्थापित नहीं हो पाएगा। इस दिन आप बच्चे के साथ पार्क जा सकते हैं, बीच जा सकते हैं या साथ घूमते हुए आइसक्रीम का आनंद भी ले सकते हैं और ऐसा आप अपने 2 साल से लेकर 22 साल तक के बच्चे के साथ भी कर सकते हैं। हफ्ते की इस एक डेट से ही दोनों के बीच का रिश्ता और मजबूत हो सकता है।

परिवार के साथ एक रात : अपना कम से कम एक रात बच्चों और परिवार को दें। इस दौरान साथ खाने और साथ सोने की आदत बनाएं और परिवार को पूरा वक्त दें। मोबाइल, लैपटॉप और टीवी से दूर रहें। बच्चों से किसी मुद्दे पर राय लें या उन्हें वो सिखाएं जो आप सिखाना चाहते हों।

साथ में पढ़ें कहानियां : बच्चों को कहानियां सुनना बहुत अच्छा लगता है। माता–पिता को इसका फायदा उठाना चाहिए और कहानियां सुनाने के दौरान बच्चे के मनोभावों को जानने की कोशिश करनी चाहिए। खासकर पिता इसका पूरा लाभ ले सकते हैं। बच्चे को दिया गया समय उनके और करीब ले जाता है।

- पत्नी के साथ सकारात्मक संबंध रखें
- बच्चों के साथ समय बिताएं
- बच्चों का सही पोषण करें
- बच्चों में सही अनुशासन दें
- दुनिया से बच्चे का परिचय कराएं
- उन्हें सुरक्षा और उपलब्धता दें
- बच्चों के लिए आदर्श बनें

एक साथ बनाएं प्रोजेक्ट : बच्चे के साथ मिलकर कोई काम करने से बच्चे में आत्मविश्वास तो जगता ही है साथ ही पिता के साथ उसकी नजदीकियां और बढ़ जाती हैं। पापा को अपने बच्चों के साथ मिलकर कोई मॉडल या खिलौना बनाना चाहिए जिससे बच्चे तो इंज्वाय करें ही पिता को भी उसके साथ अच्छा समय बिताने का मौका मिल जाएगा।

गौर कीजिए

जिन पुरुषों ने चाइल्ड केयर प्रोग्राम में हिस्सा लिया उनका बर्ताव अधिक सकारात्मक रहा।

बदल नहीं सकता पिता का स्थान

बच्चा चाहे किसी भी उम्र का क्यों न हो, पिता के स्नेह और मार्गदर्शन की उसे एक समान ही जरूरत होती है। बिहार के बाल अधिकार संरक्षण आयोग की अध्यक्ष होने के नाते निशा झा बच्चे की व्यक्तिगत अनुभूति को बेहद महत्वपूर्ण मानती हैं। उनका कहना है कि बच्चा चाहे 3 साल का अबोध बालक हो या 18 साल का वयस्क, पिता का मजबूत साथ उसे हर जगह चाहिए। पिता का स्थान कोई नहीं ले सकता है।

निशा बताती हैं कि समय बदलने के साथ ही घर और बाहर दोनों जगहों पर पुरुष और औरत की भूमिका में भी बदलाव आया है। पहले महिलाएं घर से बाहर नौकरी करने के लिए बहुत कम संख्या में निकलती थीं और उनका मुख्य काम घर पर रहकर बच्चों और परिजनों की देखभाल करना होता था। इस लिहाज से पुरुषों के कामों को तब तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता था– आर्थिक कार्य, शारीरिक कार्य और नेतृत्वकर्ता। पुरुष पैसे कमाता था, वही घर के सामानों या जरूरतों को पूरा करने के लिए घर से बाहर जाकर खरीदारी करता था या शारीरिक कार्य करता था और तीसरा जो सबसे महत्वपूर्ण है वह अपने बच्चों और पत्नी के लिए अभिभावक के रूप में भी काम आता था और इस प्रकार उन्हें नेतृत्व प्रदान करता था। समय बदलने के साथ ही जब मांएं भी पिता की तरह घर से बाहर निकलकर पैसे कमाने लगीं और मार्केटिंग का काम करने लगीं तो बच्चों के सामने बड़ा सवाल यह उठने लगा कि आखिर वह अभिभावक किसे माने! बकौल निशा यहां पर पिता का चरित्र उभरकर सामने आता है। वे कहती हैं कि पिता सुरक्षा प्रदान करने वाला होता है। बच्चा देखता है कि जब भी मां मुश्किल में होती है या उन्हें कोई खतरा होता है, तो पिता उनकी मदद करते हैं। इस रूप में पिता का वजूद आज भी हमारे परिवारों में एक अभिभावक के तौर पर बरकरार है। जहां मां से बच्चों को मजबूत स्नेह और प्यार मिलता है तो वहीं पिता से उन्हें मजबूत संरक्षा प्राप्त होती है।

निशा झा

पूर्व अध्यक्ष, बाल अधिकार संरक्षण आयोग, बिहार

बच्चे के जन्म के बाद पिता की भूमिका चार प्रकार से बंट जाती है – प्यार, स्नेह, सुरक्षा और साझेदारी। उस समय पिता को बच्चे के साथ–साथ मां के दायित्वों को भी संभालना पड़ता है।

निशा मानती हैं कि अलग–अलग वर्गों में पिता का चरित्र और कार्य अलग–अलग हो सकता है। लेकिन यदि हम विशाल संख्या वाले मध्यम और उच्च मध्यम वर्ग की बात करें तो उनमें पिता भी उन्हीं मनोभावों से गुजरता है जिससे एक मां गुजरती है। उनकी भी अपने बच्चे के प्रति समान चिंताएं और अपेक्षाएं होती हैं। यदि हम इसकी व्याख्या बच्चे की अवस्थाओं के आधार पर करें तो जन्म के बाद पिता की भूमिका चार प्रकार से बंट जाती है – प्यार, स्नेह, सुरक्षा और साझेदारी। उस समय पिता को बच्चे के साथ–साथ मां के दायित्वों को भी उतनी ही संजीदगी से संभालना पड़ता है। मां अपनी जरूरतों को बोल कर बता सकती है लेकिन बच्चा बोल नहीं सकता तो उसे समझने का भार पिता पर भी होता है। बच्चे की व्यक्तिगतता को संभालने में पिता की दक्षता का यहां वास्तव में प्रदर्शन होता है।

बच्चा जब किशोरवय में पहुंचता है तो एक बार फिर पिता की भूमिका चुनौतीपूर्ण हो जाती है। इस समय वह बहुत ही उदार और विनम्र रूप में बच्चे के सामने आता है और उसकी मांगों को समझने की कोशिश करता है। निशा कहती हैं कि अब पिता के लिए बच्चे की मांगों को समझकर उसका सही समाधान करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। उसे अपने पत्नी के साथ भी उतनी ही उदारता से पेश आना होगा ताकि बच्चा उनका अनुकरण कर सही बर्ताव करना सीख सके। इस दौरान बच्चे की जरूरतें भी बदल जाती हैं। वह वयस्क होने की ओर बढ़ता है और उसके अंदर जिम्मेदारी का बोध बढ़ने लगता है। इस समय अपने अंदर चल रहे असमंजस को दूर करने के लिए वह पिता की ओर देखता है।

निशा कहती हैं कि बच्चे के सही विकास के लिए, चाहे वह मनोवैज्ञानिक हो या शारीरिक, मां और बाप दोनों का संतुलित व्यवहार सबसे ज्यादा जरूरी है। बच्चा वही सीखता है जो मां–बाप उसे सिखाते हैं। पिता कमाने के लिए घर से बाहर जाता है और पत्नी और बच्चे की जरूरतों को पूरा करने की कोशिश करता है। पत्नी बच्चे का समाजीकरण करती है और उसकी सामाजिक जरूरतों को पूरा करने का प्रयास करती रहती है। उनके मुताबिक, पिता जितना भी समय बच्चे को दे पाता है, वह समय गुणवत्तापूर्ण होना चाहिए। ऐसा करने में मां उनकी मदद कर सकती है। इसके लिए वह पिता के तनाव को कम करने में मदद कर सकती है, काम की परेशानियों को साझा कर सकती है। घर का माहौल शांत और खुशनुमा बनाए रखने की कोशिश कर सकती है ताकि पिता जब आएं तो उन्हें बेहतर महसूस हो, मां पिता के अन्य कामों का बोझ हल्का करने के लिए उनका दायित्व खुद संभाल सकती है और पिता को जरूरी मसलों में सलाह भी दे सकती है। ऐसा करने का सबसे बड़ा लाभ बच्चों को होगा क्योंकि मां–बाप के बीच अच्छी साझेदारी से उनमें भी ऐसी ही भावना विकसित होगी।

बच्चा जब वयस्क हो जाता है तो उसके पास समाज की सीखों के साथ–साथ अपने विचार भी आ जाते हैं। इस समय पिता को सतर्कता के साथ बच्चे के साथ पेश आना पड़ता है। उसे अधिक मित्रवत व्यवहार करने की जरूरत होती है। बच्चे की बातों को धैर्यपूर्वक सुनना और सोच–समझ कर जवाब देना ही सबसे बुद्धिमतापूर्ण स्थिति हो सकती है। इस समय भी पिता का स्थान कोई नहीं ले सकता क्योंकि अभिभावकत्व और नेतृत्व उनका नैसर्गिक गुण है।

गौर कीजिए

ब्रिटेन में एक शोध में पाया गया कि गर्भावस्था में अल्ट्रासाउंड के दौरान पिताओं का मौजूद रहना अच्छे पितृत्व के लिए जरूरी है।

बदल रही है लोगों की सोच

बिहार के जाने–माने समाजशास्त्री डॉ. शैवाल गुप्ता बड़ी ईमानदारी से यह मानते हैं कि उनकी बेटी की आरंभिक परवरिश में उनका विशेष योगदान नहीं रहा। लेकिन वे यह बताना भी नहीं भूलते कि उनके श्वसुर यानी बच्ची के नाना ने उनकी बेटी की वो मजबूत नींव तैयार की जिसपर आज भी वो निडरता से खड़ी है। डॉ. शैवाल गुप्ता मानते हैं कि बच्चे की परवरिश में मां और पिता दोनों की भूमिका समान होती है। मां जहां घरेलू मोर्चे पर बच्चे की हर जरूरत को पूरा करने की कोशिश में रहती है तो वहीं पिता घर के बाहर जाकर संसाधन जुटाने का काम करता है। हमारे बिहार में एक बड़ी संख्या निम्न और मध्यम वर्ग के लोगों की है। इन परिवारों में पिता को आज भी विशिष्ट स्थान हासिल होता है जो पत्नी और बच्चे से जुड़े सारे फैसले खुद लेने में विश्वास रखता है। वे कहते हैं कि ज्यादातर निम्नवर्गीय घरों में पिता की कमाई का बड़ा हिस्सा शराब और जुए जैसी बुरी आदतों में भी खर्च हो जाता है। इन परिवारों को प्रशिक्षण देने की जरूरत है। उन्हें शिक्षा और ज्ञान का महत्व बताना होगा। पहले के समय में लड़कियों की शादी के समय केवल संपत्ति पर ध्यान दिया जाता था। लड़के का घर, उसका कारोबार देखकर ही मां–बाप संतुष्ट हो जाते थे लेकिन अब लोगों की सोच बदलने लगी है। लड़के और लड़कियों की शिक्षा सबसे पहले देखी जाने लगी है। निम्नवर्गीय लोगों को भी यह बताना होगा भौतिक संपत्ति का स्थानांतरण किया जा सकता है, उसे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को सौंपा जा सकता है लेकिन बुद्धि और ज्ञान को किसी अन्य व्यक्ति को सौंपा नहीं जा सकता है। वह व्यक्ति के साथ ताउम्र बना रहता है। इसलिए बच्चों को शिक्षित अवश्य बनाना चाहिए। ऐसे परिवारों को यह बताया जाना चाहिए कि जो धन व संसाधन वे शराब और जुए जैसी बुरी लत में बर्बाद कर देते हैं उसका इस्तेमाल वे बच्चों की शिक्षा और अच्छे पालन–पोषण में कर सकते हैं जो एक प्रकार से भविष्य के लिए निवेश के समान है। इन सबके अलावा डॉ. शैवाल ये भी मानते हैं कि समाज से ऐसे रोल मॉडल को सामने लाना होगा जिनसे प्रेरणा लेकर लोग अपने बच्चों को भी पढ़ा–लिखा सकें। आज छोटे–छोटे गांवों के बच्चे देश–विदेश में जाकर परचम लहरा रहे हैं, ऐसे बच्चे अन्य लोगों के लिए प्रेरक बन सकते हैं। डॉ. शैवाल कहते हैं कि पटना जैसे छोटे शहरों में भी पुरुषों की सोच में बदलाव आया है। इसमें बड़ा योगदान उन सरकारी योजनाओं का भी है जो महिलाओं को समानता का हक देकर उन्हें नौकरी करने की आजादी दे रहे हैं। खासकर बिहार में पंचायतों में महिलाओं को 50 फीसद तक आरक्षण दिया गया है जिसकी वजह से महिलाएं गांव की मुखिया और प्रधान जैसे पदों के लिए चुनी जा रही हैं। इसी तरह सरकारी नौकरियों में 35 फीसद तक आरक्षण दिया जा रहा है। इसका असर लोगों की सोच पर भी पड़ रहा है।

डॉ. शैवाल गुप्ता

सबको करनी होगी कोशिश

समाजशास्त्री और विचारक डॉ. रेणु रंजन समाज में आ रहे बड़े बदलाव की ओर संकेत करती हैं। वे कहती हैं कि पहले की तुलना में आज परिवार कई परिवर्तनों से गुजर रहे हैं। न केवल महिलाओं के स्थान बदले हैं बल्कि पुरुष भी अपनी परंपरागत छवि से आगे आकर नये चरित्रों को गढ़ रहे हैं। पहले पुरुषों को बच्चे की देखभाल करते या पत्नी की मदद करते नहीं देखा जाता था। बल्कि ऐसा करने वाले इक्का–दुक्का पुरुषों को खुद अपने ही परिवार के उपहास का पात्र बनना पड़ता था। लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब पिता खुलकर सामने आ रहे हैं। उनका कार्य केवल संसाधन जुटाने तक ही सीमित नहीं रह गया है बल्कि वे भावनात्मक रूप से भी बच्चे से उतना ही जुड़ाव रख रहे हैं जितना कि मां। डॉ. रेणु मानती हैं कि इस बदलाव के पीछे बहुत बड़ा कारण औरतों का नौकरी के लिए घर से निकलना है। इसे हम समय की जरूरत भी कह सकते हैं कि मर्द आज घर और बच्चों के काम में हाथ बंटाने लगे हैं। पहले की तरह अब संयुक्त परिवार नहीं होते जहां घर के बड़े–बुजुर्ग बच्चे की देखभाल कर लिया करते थे। अब एकल परिवार का चलन है, इसमें सहयोग करना मजबूरी भी बन चुकी है। इसके अलावा शिक्षा का प्रचार–प्रसार होने से लोगों की सोच भी बदली है और वे अपने दायित्वों को समझने लगे हैं।

डॉ. रेणु रंजन

डॉ. रेणु बताती हैं कि महानगरों में जहां समाज में दृश्य परिवर्तन आए हैं वहीं छोटे शहरों और गांवों में यह अभी भी प्रत्यक्ष तौर पर सामने नहीं आ पाया है। हालांकि पटना जैसे शहर में परिवर्तन साफ तौर पर देखे जा सकते हैं। गांवों में या कम शिक्षा वाले क्षेत्रों में समग्र रूप से जागरूकता अभियान चलाए जाने की जरूरत है। वे मानती हैं कि बच्चे के विकास के साथ पिता को जोड़ने का सबसे अच्छा तरीका है डॉक्टर की सलाह। यदि डॉक्टर बच्चे के जन्म के बाद से ही पिता को उसकी जिम्मेदारी के बारे में समझाएं तो इसका बड़ा प्रभाव हो सकता है। वे उन्हें बच्चे के टीकाकरण के समय साथ आने को कह सकती हैं। अक्सर जच्चे को डॉक्टर के पास ले जाने का काम घर की कोई औरत करती है लेकिन यदि इस समय उसका पति साथ जाय तो जच्चे और बच्चे के प्रति उसकी समझ और जुड़ाव और विकसित होगा। इसी तरह वे मीडिया की भूमिका को भी बहुत महत्वपूर्ण मानती हैं। वे कहती हैं कि टीवी या रेडियो पर यदि ऐसे विज्ञापन प्रसारित किये जायें जिनमें पिता के दायित्वों और उनकी बदली हुई भूमिका के बारे में बताया गया हो तो इसका अच्छा प्रभाव लोगों पर पड़ेगा। लोगों की सोच को बदलने में वे समाज के बड़े–बूढ़ों का बड़ा रोल मानती हैं। वे कहती हैं कि यदि बुजुर्ग लोगों को ये समझाएं कि परिवार में उनका कार्य और दायित्व क्या है तो इसका भी सकारात्मक असर हो सकता है।

गौर कीजिए

चिली में हुए एक अध्ययन में पाया गया कि लेबर रूम में पतियों के मौजूद होने का उनके पितृत्व पर गहरा असर होता है।

बेटे पर कर दी जिंदगी कुर्बान

बच्चे की परवरिश क्या होती है इसे संजीदगी से जाना है पेशे से पत्रकार प्रणव चौधरी ने। बेटा पांच साल का ही था कि पत्नी ने हमेशा के लिए साथ छोड़ दिया। कैंसर के दंश ने उनकी जान ले ली। वो 1999 का वर्ष था और अब 2016। 17 साल का यह सफर प्रणव ने अकेले नहीं काटा बल्कि इसमें अपने बेटे को भी साथी बना लिया। बेटे को पालना और उसे बड़ा होते देखना ही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया। पत्नी का असमय निधन हो जाना प्रणव के लिए असहनीय था। तिस पर अबोध बालक का दायित्व। प्रणव बताते हैं ''तब मैंने बेटे की परवरिश करना अपने जीवन की प्राथमिकता बना ली और अपना सब कुछ उस पर न्योछावर कर दिया। इस काम में मेरे साथ रहीं मेरी मां।'' हालांकि प्रणव की बातों में इस बात का मलाल भी झलकता है कि जिस उम्र में उन्हें अपनी मां की सेवा करनी चाहिए थी उस उम्र में मां को उनके बेटे की सेवा करनी पड़ी। वे मानते हैं कि यदि उस मुश्किल समय में मां ने साथ नहीं दिया होता तो उनके लिए बेटे को संभाल पाना आसान नहीं होता।

प्रणव चौधरी

प्रणव मानते हैं कि बच्चे के पालन–पोषण में मां और बाप दोनों का महत्व बराबरी का होता है। न केवल मां और न ही केवल पिता बच्चे की सही परवरिश में सक्षम हो सकता है। जब तक दोनों अपनी–अपनी भूमिकाओं का उचित तरीके से निर्वहन नहीं करते तब तक बच्चे का समुचित विकास नहीं हो पाता है। हालांकि वे बताते हैं कि बदलते दौर और परिस्थितियों में इसमें भी बड़ा बदलाव आया है। आज महिलाएं बड़ी संख्या में नौकरी करने के लिए घर से बाहर निकल रही हैं। ऐसे में पुरुष की भूमिका घर के भीतर बढ़ जाती है। तब बच्चों की देखभाल करना केवल महिलाओं का काम नहीं रह जाता बल्कि पिता को भी इसमें मदद करनी होती है। और ऐसा हो भी रहा है। पुरुष अपनी बदली हुई भूमिका को तेजी से स्वीकार कर रहे हैं। वे बताते हैं कि जितना महत्व मातृत्व का है, उतना ही पितृत्व का भी है और इस सोच को स्थान दिया जाने लगा है। पिता का रोल उन क्षेत्रों में भी बढ़ा है जहां एकल अभिभावक का चलन होने लगा है। आज बड़ी संख्या में पुरुष शादी नहीं कर रहे और बच्चों को गोद लेकर उनका पालन–पोषण कर रहे हैं। ऐसे पुरुष बच्चे के लिए मां और पिता दोनों की भूमिका का पालन करते हैं। ऐसा करने वाली महिलाओं की संख्या भी बढ़ रही है जो बिना शादी किये बच्चों को गोद लेकर उनकी एकल अभिभावक की भूमिका निभा रही हैं। प्रणव बताते हैं कि गोद लिए जाने वाले बच्चों में लड़कियों की संख्या बढ़ी है जो समाज के बदलते नजरिये को दर्शाता है। पिता की अपनी भूमिका के बारे में बताते हुए प्रणव कहते हैं कि उन्होंने बेटे को अपना दोस्त बना लिया और उसी प्रकार से उसकी परवरिश की। ऐसा करने से दोनों के बीच विश्वास और स्नेह और बढ़ा। उनका पुत्र उनसे अपनी हर बात साझा करता है और यह एक पिता के लिए सबसे संतोष की बात होती है। वे बताते हैं कि उन्होंने खुद कभी अपने बेटे से कोई अपेक्षा नहीं रखी और इसलिए उन्हें न तो किसी बात का दुख है और न पछतावा। उन्होंने अपने बेटे को हमेशा अच्छा इंसान बनना सिखाया और इस पर उन्हें गर्व है।

बांट लिए अपने दिन और रात

बच्चे को संभालना मां और पिता का दायित्व होता है और इसे दोनों समझदारी से साझा कर सकते हैं। ये मानना है माधुरी और राजेश कुमार का। माधुरी पटना में पत्रकार हैं और राजेश भी मीडिया के क्षेत्र में सक्रिय हैं। दोनों व्यस्त जरूर हैं मगर अपनी जिम्मेदारियों के प्रति पूरी तरह सतर्क और जवाबदेह भी।

माधुरी और राजेश शिफ्ट में काम करते हैं। दोनों ने बेटे की परवरिश के लिए अपने दिन–रात का बंटवारा कर लिया है। ऐसा करने से मां या पिता में से कोई एक हमेशा बच्चे के पास होता है जो उसके सही विकास के लिए बेहद जरूरी है। राजेश बताते हैं कि बच्चे के पालन पोषण में मां और पिता दोनों की भूमिका समान होती है। उनका कहना है कि समाज में भी तभी संतुलन कायम हो पाएगा जब स्त्री और पुरुष दोनों अपनी–अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे और उसका समान रूप से निर्वहन भी करेंगे। माधुरी कहती हैं कि कामकाजी मां को अपेक्षाकृत अधिक साथ और प्यार की जरूरत होती है। उन्हें घर और नौकरी दोनों संभालने में ज्यादा संघर्ष करना पड़ता है। जब मुझे नौकरी के लिए निकलना पड़ता था तो उस समय बच्चे को संभालने में परिवार का पूरा साथ मिला लेकिन हर स्त्री को यह सहयोग नहीं मिल पाता है।

माधुरी–राजेश कुमार

राजेश मानते हैं कि यदि आज भी बच्चों की देखभाल करने वाले पिताओं की संख्या कम है तो इसके पीछे समाज में चली आ रही पुरातन सोच है जो उन्हें ऐसा करने से रोकती है। हमारे समाज में पुरुषों को कठोर और अनुशासनप्रिय बनाया जाता है और उन्हें घर के सरोकारों से दूर रहने की सीख दी जाती है। नतीजतन वे अपने बच्चों से भी दूर होने लगते हैं। राजेश के मुताबिक, इस सोच को बदलने की जरूरत है और इसमें मीडिया अपनी बड़ी भूमिका निभा सकता है। मीडिया को समाज के भीतर से ऐसे रोल मॉडल को सामने लाना होगा जिन्होंने पितृत्व की नई परिभाषा गढ़ी हो। लोगों को यह बताना होगा कि पिता को भी अपने बच्चों की देखभाल करने और उनकी जरूरतों को पूरा करने में उतना ही आनंद आता है जितना कि मां को और ऐसा करने वालों को सम्मानित करना चाहिए न कि अपमानित।

गौर कीजिए

अमेरिका में हुई एक स्टडी के मुताबिक 2011 में 18 फीसद पिताओं ने अपने छोटे बच्चों की देखभाल की।

बच्चे जिम्मेदारी नहीं, प्यार हैं

शहर के प्रसिद्ध दंत चिकित्सक डॉ. आशुतोष त्रिवेदी और उनकी पत्नी प्रियदर्शिनी, व्यस्त दंपति हैं। दोनों के अपने सामाजिक सरोकार और दायित्व हैं, फिर भी दिमाग का एक कोना हमेशा अपने जुड़वा बच्चों की चिंता में सक्रिय रहता है। प्रियदर्शिनी, जो पॉपुलेशन फाउंडेशन ऑफ इंडिया में प्रोजेक्ट मैनेजर हैं, इस बात को शिद्दत से मानती हैं कि अपने बच्चों की देखभाल करना न तो उनकी ड्यूटी है और न ही जिम्मेदारी, ये तो प्यार है जो उन्हें अपने बच्चों का ध्यान रखने, उनकी सुरक्षा करने के लिए प्रेरित करती है। यदि उन्हें अपने बच्चों का ध्यान लगा रहता है तो इसका कारण सिर्फ और सिर्फ उनके लिए प्यार है जो वे महसूस करती हैं। बच्चों के खाने, सोने, पढ़ने और खेलने के हर एक पल का ख्याल उन्हें होता है चाहे वो शारीरिक रूप से उनके साथ मौजूद रहें या न रहें। ठीक ऐसी ही सोच है डॉ. त्रिवेदी की। वे कहते हैं कि बच्चों के साथ बहुत सारा समय बिता लेने भर से माता–पिता की छुट्टी नहीं हो जाती है बल्कि उस समय का उपयोग कैसे किया गया, यह महत्वपूर्ण है। थोड़ा समय ही दें लेकिन यदि वह गुणवत्तापूर्ण हो तो वो ज्यादा असर करता है।डॉ. त्रिवेदी बच्चों के पालन–पोषण में मां और पिता दोनों की भूमिका को समान रूप से जरूरी मानते हैं। वे कहते हैं कि पिता भी मानसिक तौर पर बच्चे से उतना ही जुड़ा होता है जितनी की मां, लेकिन उसके प्यार जताने का तरीका अलग होता है। उन्होंने अपने बच्चों को काम करते हुए भी संभाला है। उनका क्लीनिक उनके घर के ही एक हिस्से में है इसलिए वे काम के साथ–साथ बच्चों को भी देख लेते हैं और उनकी हर जरूरत का ध्यान रखते हैं। काम के दौरान छोटे–छोटे अंतराल में वे बच्चों के साथ खेलना और उनकी बातों को सुनना नहीं भूलते। प्रियदर्शिनी भी यह मानती हैं कि बच्चों की बातों को ध्यानपूर्वक सुनना बेहद जरूरी है। अगर आप सारा दिन बच्चों के साथ रहें लेकिन उनकी बातों पर ध्यान न दें, उनकी जरूरतों और मांगों को अनसुना कर दें तो धीरे–धीरे बच्चा आपसे अपनी बात कहने से कतराने लगता है और पास होकर भी आप उससे दूर हो जाते हैं। बच्चे से मां–बाप का संबंध एकतरफा नहीं बल्कि दोनों ओर से होता है। वो आपके हर व्यवहार को देखता है। आप जैसा उसके साथ पेश आएंगे, वो भी आपके साथ वैसा ही बर्ताव करेगा। पिता को लेकर चली आ रही अब तक की अवधारणा में बदलाव आया है और अब बच्चे उन्हें ज्यादा करीब पाने लगे हैं। डॉ. त्रिवेदी कहते हैं कि मां के नौकरी करने से घर के अंदर पिता की भूमिका में परिवर्तन हुआ है। पहले जहां पिता को कड़क और अनुशासनप्रिय माना जाता था वहीं अब उसका कोमल स्वरूप सामने आ रहा है। उनका मानना है कि अनुशासन दवाब में नहीं बल्कि कोमलता से सिखाया जाना चाहिए।

डॉ. आशुतोष त्रिवेदी–प्रियदर्शिनी

बेटों को भी दें नैतिकता की सीख

व्यक्ति में अच्छा इंसान बनने का बीज बचपन में ही पड़ जाता है और उसे पोषित करने में स्कूलों की बड़ी भूमिका होती है। वो वक्त गया जब आदर्श बेटी, पत्नी और मां बनने की शिक्षा केवल लड़कियों को दी जाती थी, अब वक्त है लड़कों को भी समान रूप से आदर्श बेटा, पति और पिता बनने की सीख देने का। ये मानना है पटना में डीएवी पब्लिक स्कूल की प्राचार्या ममता मेहरोत्रा का। ममता जी के पति श्री ब्रजेश महरोत्रा बिहार सरकार में आला अधिकारी हैं। वे मानती हैं कि उनके पास समुचित संसाधन मौजूद रहे जिसके कारण वे अपने बच्चों की परवरिश कर पाईं लेकिन देश के ज्यादातर परिवारों के पास इतना संसाधन नहीं होता जिससे कि वे बच्चों का पालन आसानी से कर सकें। इसके लिए हमें सहयोग और समानता आधारित व्यवस्था को अपनाना होगा। वे कहती हैं कि बेटे हों या बेटी, दोनों को समान संस्कार के साथ आगे बढ़ने की जरूरत है। नैतिकता का पाठ केवल लड़कियों को ही नहीं बल्कि लड़कों को भी पढ़ाना होगा तभी वे एक अच्छा पुरुष, पति या पिता बन पाएंगे।

ममता मानती हैं कि हमारे समाज में अभी भी महिलाओं के साथ समानता वाली स्थिति नहीं बन पाई है। ज्यादा संख्या में औरतें नौकरी करने के लिए जरूर निकल रही हैं लेकिन उनकी घरेलू जिम्मेदारियां कम नहीं हुई हैं। ज्यादातर पति अभी भी अपनी परंपरागत भूमिका में ही रहते हैं जिन्हें पत्नी का नौकरी करके घर में पैसे लाना तो अच्छा लगता है लेकिन उसका महत्वाकांक्षी हो जाना अखरता है। पत्नी की कमाई से उनकी जीवनशैली बदलती है तो यह पति को पसंद है लेकिन पत्नी की आजाद विचारधारा उन्हें पसंद नहीं आती है। यही स्थिति घर में भी होती है। अभी भी भारतीय घरों में पति बच्चों की देखभाल में सक्रिय रूप से नहीं जुड़ते हैं। वे इसे औरतों का काम समझते हैं। ये ठीक है कि धीरे–धीरे बदलाव आ रहा है लेकिन परिपक्व और प्रगतिवादी सोच वाले पुरुषों की संख्या बेहद कम है। ऐसी स्थिति में लड़कियों और महिलाओं पर दवाब बढ़ता जा रहा है। वे एक ओर तो अपनी परंपरागत भूमिका से इतर हर प्रकार के क्षेत्र में कदम बढ़ा रही हैं लेकिन दूसरी ओर बेटी, पत्नी और मां के रूप में समाज द्वारा निर्धारित भूमिकाओं को भी उसी प्रकार से निभा रही है। कह सकते हैं कि औरत 'सुपरवुमेन' वाली स्थिति में है जहां उसकी भूमिकाओं का दायरा बढ़ता जा रहा है। ममता का मानना है कि यदि बेटों को अच्छा पिता बनाना है तो उन्हें भी घर में अपनी मां के काम में हाथ बंटाना सिखाना होगा। अपनी मां को काम करते देखकर उनके दिल में महिलाओं के लिए इज्जत का भाव उत्पन्न होगा। साथ ही वे समझ पाएंगे कि घरेलू काम करने से कोई छोटा नहीं हो जाता है। वे कहती हैं कि स्कूल की बैठकों में कई पिता आते हैं लेकिन सिर्फ इसलिए कि वो मानते हैं कि स्कूल जाना पति का काम है, पत्नी का नहीं।

ममता मेहरोत्रा

गौर कीजिए

अमेरिका में 2013 में कस्टडी के 17 फीसद मामलों में सिंगल पिता की जीत हुई।

समाज में संक्रमण का दौर

लंबे अरसे से समाज सेवा कर रहीं डॉ. शरद कुमारी को अपने दोनों बच्चों की परवरिश में पति का पूरा साथ मिला। अपनी सामाजिक प्रतिबद्धताओं को पूरा करने के लिए शरद जी को काफी समय घर से बाहर व्यतीत करना पड़ता था और उस समय घर में उनके बिजनेसमैन पति बच्चों की देखभाल किया करते थे। शरद जी कहती हैं कि उनके पति ने मां की तरह बच्चों का पालन–पोषण किया। हमारे समाज में अभी भी पति या पिता से ऐसे कामों की अपेक्षा नहीं की जाती है इसलिए जब वे घर से बाहर होती थीं और पति बच्चों की देखभाल करते थे तो ये चर्चा का विषय बन जाता था।

डॉ. शरद का मानना है कि पति–पत्नी के बीच के संबंध बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं। इस संबंध की मधुरता को न तो कोई बाहरी प्रयास बनाए रख सकते हैं और न ही सरकारी योजनाएं। यह तो केवल पति–पत्नी की आपसी समझदारी पर ही निर्भर करता है। कई बार कम पढ़े–लिखे दंपति भी अपने संबंधों को इतना सरल और मधुर बनाए रख पाते हैं जितना खूब पढ़े–लिखे लोग भी नहीं कर पाते। बल्कि परिवार टूटने और तलाक जैसे मामले तो शहरी, संपन्न और शिक्षित परिवारों में ही ज्यादा देखने को मिलते हैं। दरअसल समाज में हो रहे बदलावों को समझने और अपनाने की जरूरत है। इन बदलावों का सबसे ज्यादा असर औरतों और बच्चों पर होता है इसलिए उनके साथ उदारता से पेश आने की जरूरत है। शरद जी कहती हैं कि अगर परिवार में पिता की सहभागिता को बढ़ाना है तो उसकी शुरुआत बचपन से ही कर देनी होगी। स्त्री और पुरुष के बीच श्रम विभाजन के पुरातन नियमों को तोड़कर लिंग नहीं बल्कि योग्यता और समय के आधार पर कामों का बंटवारा करना होगा। बच्चों को बताना होगा कि कोई काम लड़का या लड़की का नहीं होता बल्कि जरूरत के मुताबिक सबका होता है। बेटों को घर के कामों में जोड़ना होगा ताकि वे उसका महत्व समझ सकें। स्कूल भी इसमें महती भूमिका निभा सकते हैं। शरद जी मानती हैं कि समाज में बदलाव आ रहे हैं। न केवल महानगरों में बल्कि गांवों में भी पुरुषों की सोच बदली है। ये अलग बात है कि वे सामाजिक उपहास के भय से इसे प्रत्यक्ष रूप से मानते नहीं हैं। बाजारवाद और बदली हुई परिस्थितियों के कारण अब पुरुषों को भी घर–परिवार देखना मजबूरी बन गई है। हालांकि इस सबके बीच औरत की स्थिति पहले से ज्यादा जटिल हो गई है। पहले जहां वो केवल घर की जिम्मेदारी तक ही सीमित थी वहीं अब उसे बाहर का काम भी साथ–साथ देखना पड़ता है। बिना संसाधन और सुविधा के उनसे घर के बाहर मर्दों की बराबरी का काम करने की अपेक्षा की जाती है तो घर के भीतर परंपरागत भूमिका की। एक तरह से कहा जाय तो वे संक्रमण के दौर से गुजर रही हैं।

डॉ. शरद कुमारी

परवरिश के नये आयाम खुले

घर के अंदर मां–बाप की भूमिका में बदलाव आया है तो उसका असर बच्चों पर भी साफ दिख रहा है। आज के समय में पति–पत्नी दोनों के नौकरी करने के कारण बच्चों को डे केयर सेंटर में रखने का चलन भी बढ़ा है। पटना में पॉपकार्न इंटरनेशनल प्ले स्कूल की सेन्टर इंर्चाज सुश्री आरजू नकवी का कहना है कि परिवार और समाज कई बदलावों से गुजर रहा है। आज की भाग–दौड़ वाली हाइटेक जिंदगी में लोगों के सोचने का नजरिया बदल गया है। परवरिश के नये आयाम खुलने लगे हैं। इसमें सबसे ज्यादा जो चीज बदली है वह है पिता की भूमिका। वे बताती हैं कि उनके स्कूल में बच्चों को लेकर आने वाले करीब 70 फीसद पिता को पता होता है कि उनके बच्चे ने आज क्या खाया है या उसके लंचबॉक्स में क्या है। उन्हें अपने बच्चे के डायपर से लेकर किताबों तक हर जरूरी सामान की जानकारी होती है। यह दर्शाता है कि वे अपने बच्चों से कितना ज्यादा जुड़े हैं। वो समय गया जब पिता बच्चों की सारी जिम्मेदारी मां पर डालकर खुद को मुक्त कर लेते थे। आज वे भी बच्चे से उतने ही संबद्ध हैं जितना कि मां। वे कहती हैं कि पति–पत्नी के बीच संवाद बढ़ा है और दोनों को एक–दूसरे की परेशानियों और जरूरत का अहसास है। अपने अनुभव से वे बताती हैं कि उनकी एक परिचिता ने जब अपना बिजनेस शुरू किया तो उनके पति ने न केवल बच्चों को संभाला बल्कि मनोवैज्ञानिक रूप से पत्नी का भी पूरा साथ दिया। इससे पता चलता है कि आज पति अपनी पत्नी को हर काम में सहयोग दे रहे हैं। इसका सकारात्मक असर बच्चे पर पड़ता है। बच्चे में भी सहयोग और सम्मान करने की आदत का विकास होता है। वे सीखते हैं कि मुश्किल समय में एक–दूसरे का साथ देकर कैसे आगे बढ़ना है। भले ही बच्चे हर बात को कहकर नहीं बता सकते लेकिन मानसिक रूप से वे इससे मजबूत होते जाते हैं।

आरजू नकवी

बच्चों को क्रेश में रखने के चलन के बारे में आरजू कहती हैं कि इसकी अच्छाई और बुराई के बारे में सोचना अपने–अपने नजरिये पर निर्भर करता है। जिस तरह हर बात के दो पहलू होते हैं उसी तरह क्रेश बच्चों के हित में है या नहीं इसके बारे में भी दोनों प्रकार की सोच देखने को मिलती है। यह उन दंपतियों के लिए वरदान है जो एकल परिवार में हैं और कामकाजी हैं। उनके बच्चों को न केवल सुरक्षा मिलती है बल्कि शिक्षा के साथ–साथ आज के दौर के हिसाब से अन्य जानकारियां भी प्राप्त हो जाती हैं। वे बताती हैं कि कई दंपति ऐसे भी हैं जो अपने मां–बाप के साथ रहते हैं लेकिन फिर भी बच्चों को हमारे यहां रखना चाहते हैं ताकि वे हर तरह से निश्चिंत रहें। हालांकि आरजू ये मानती हैं कि बच्चों का संपूर्ण विकास अपने मां–बाप के साथ ही होता है और तभी उनमें भावनात्मक लगाव पैदा होता है।

गौर कीजिए

अमेरिका में 2013 में 44 फीसद पिता तलाकशुदा थे, 33 फीसद अविवाहित, 19 फीसद अलग हो चुके थे और 4.2 फीसद विधुर थे।

पिता ने अपना फर्ज निभाया, पर बेटे ने घर से निकाल दिया

''एक पिता होने के नाते मैंने वो सब कुछ किया जो मुझे करना चाहिए था। जितना पढ़ा सकता था, पढ़ाया भी लेकिन बदले में मुझे क्या मिला, सिर्फ अपमान!'' यह व्यथा है 70 साल के एक पिता की जिसे उसके जवान बेटे–बहू ने घर से निकाल बाहर कर दिया। पटना के आईजीआईएमएस के पास रहने वाले दीपक महतो कई दशकों से रिक्शा चलाने का काम कर रहे हैं। घर में बेटा हुआ तो लगा था कि भविष्य सुरक्षित हो गया। उसे हरसंभव खुशी दी, पढ़ा–लिखा कर बड़ा किया, शादी की, लेकिन इन सबका फल उन्हें अपने ही घर से बाहर होकर भुगतना पड़ रहा है। इस उम्र में भी अपना और पत्नी का पेट पालने के लिए रिक्शा चलाना पड़ रहा है। दीपक कहते हैं कि मां–बाप तो बच्चे की परवरिश कर देते हैं लेकिन क्या बच्चे का मां–बाप के लिए कोई फर्ज नहीं बनता। क्या केवल माता–पिता को ही परवरिश सिखाने की जरूरत है, बच्चों को कुछ भी सिखाना जरूरी नहीं है।

कड़ी मेहनत से बच्चों को पाला

राजवंती देवी ने अपने पांच बच्चों को बड़ी मुश्किलों से पाल–पोस कर बड़ा किया। वो खुद खाना बनाने का काम करती हैं और उनके पति सुरक्षा गार्ड का। दोनों ने मेहनत से पांचों बच्चों को पढ़ाया–लिखाया और उन्हें काबिल बनाया। राजवंती कहती हैं ''मेरे पति दिन में रंगाई–पुताई का काम करते हैं और रात को गार्ड का। ऐसे में उनके पास बच्चों को देखने का समय नहीं होता। इसलिए बच्चों से जुड़े हर फैसले में मेरा सीधा दखल रहा। मेरे पति ने कभी भी मेरे फैसले पर आपत्ति नहीं जताई।'' इसे वे बड़ा सहयोग मानती हैं। राजवंती कहती हैं कि जब उनके बच्चे अपना ध्यान रखने योग्य हो गए तब वे घर से बाहर काम करने के लिए निकलीं। उस समय भी पति ने उनका पूरा साथ दिया। समाज और परिवार की ओर से भी कोई रुकावट नहीं डाली गई। राजवंती के बच्चे भी उनका बहुत सम्मान करते हैं। वे कहती हैं कि उनके पति दिन–रात काम करते हैं तो केवल अपने परिवार के लिए। वे भले ही शारीरिक रूप से बच्चों के साथ हर समय मौजूद नहीं रहते हैं लेकिन मानसिक तौर पर वे हमेशा हम सबसे जुड़े रहते हैं। उन्हें हमेशा हमारी चिंता सताती रहती है। यह भी तो एक प्रकार का सहयोग ही है जो हमें उनसे मिलता रहता है। वे अपने लिए कुछ नहीं चाहते और अपनी पूरी कमाई भी मेरे हाथ में दे देते हैं। राजवंती चाहती हैं कि भविष्य में उनका बेटा भी एक जागरूक पति और पिता बने तथा परिवार और बच्चों की देखरेख करे।

बच्चे के दोस्त बनें मां–बाप

पटना में रहने वाले धर्मेन्द्र कुमार अपने बच्चों के पिता ही नहीं बल्कि उनके पक्के दोस्त भी हैं। दो बच्चों के पिता धर्मेंद्र ओरियेंटल बैंक ऑफ कॉमर्स में कार्यरत हैं जबकि उनकी पत्नी सुधा का बूथ चलाती हैं। दोनों पति–पत्नी पूरे दिन व्यस्त रहते हैं लेकिन इसके बावजूद बच्चों की परवरिश से उन्होंने कोई समझौता नहीं किया। वे बताते हैं कि उन्होंने अपने कामों को इस प्रकार बांट लिया जिससे बच्चों को कोई समस्या न हो। जब वे बच्चों को स्वीमिंग सिखाने ले जाते तो पत्नी घर में रहकर खाना पकाने का काम कर लेतीं और जब वे ऑफिस चले जाते तो पत्नी भी बच्चों की जरूरतें पूरी कर बूथ का काम देख लेतीं। धर्मेंद्र जी कहते हैं कि उन्होंने कभी भी अपने बच्चों को डांटा नहीं बल्कि एक दोस्त की तरह उनसे पेश आए। इसी का परिणाम है कि आज उनके बच्चे अपनी हर बात उनसे साझा करते हैं। एक छोटा सा उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि उनके बच्चे तैराकी से डरते थे। जब वे उन्हें तैराकी सिखाने लेकर गए तो बच्चे नर्वस थे लेकिन उन्होंने बच्चों का इतना हौसला बढ़ाया कि महज पांच दिनों में वे तैराकी की ज्यादातर बारीकियां सीख गए। वे रोज दो घंटे तक बच्चों के साथ रहे और उनका आत्मविश्वास बढ़ाते रहे। ये एक पिता के रूप में उनकी बड़ी कामयाबी है। वे कहते हैं कि मां–बाप को बच्चों को गुणवत्तापूर्ण समय देना चाहिए तभी बच्चे न केवल उनके दोस्त बनेंगे बल्कि उनका सम्मान भी करेंगे।

गौर कीजिए

इलिनॉयस विश्वविद्यालय में पाया गया कि जिन बच्चों के पिता ज्यादा जुड़े रहे उन्होंने पढ़ाई में अच्छा किया।

फादर्स डे : पिता को सम्मान

अमेरिका के स्वास्थ्य विभाग ने 2003 में एक पहल करते हुए पिता आधारित नीति के लिए पांच बिंदुओं को चिह्नित किया –

1.सभी पिता अपने बच्चों की अच्छी परवरिश में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

2. मां–बाप यदि साथ नहीं भी रहते हैं तो भी वे अपने बच्चों के पालन–पोषण में साझा भूमिका निभा सकते हैं।

3.परिवार में पिता की भूमिका अलग होती है और वे सांस्कृतिक एवं सामुदायिक मूल्यों पर ध्यान देते हैं।

4.पुरुषों को पितृत्व के लिए तैयार करने के लिए आरंभ से ही शिक्षा और सहयोग दिया जाना चाहिए।

5.पुरुषों को घर के कार्यों में ज्यादा योगदान देने को प्रेरित करने के लिए सरकार को भी प्रोत्साहन और प्रयास करना चाहिए।

◆ 1972 में राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने जून के तीसरे रविवार को फादर्स डे मनाने का दिन तय कर दिया।

◆ दुनिया के कई हिस्सों में फादर्स डे को मार्च, अगस्त, सितम्बर, नवम्बर और दिसम्बर में मनाया जाता है।

हर साल पूरी दुनिया में जून के तीसरे रविवार को फादर्स डे के रूप में मनाया जाता है। 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में शुरू हुए इस आयोजन को पिता के सम्मान के तौर पर मनाया जाता है। वाशिंगटन की रहने वाली सोनोरा स्मार्ट डॉड ने सबसे पहले वर्ष 1910 में अपने पिता को सम्मान देने के लिए यह दिन चुना था। सोनोरा ने देखा था कि मां की मौत के बाद किस तरह उनके पिता ने उन्हें पाला और अपनी सारी खुशियों को अपने बच्चों के नाम पर कुर्बान कर दिया। उसी दौरान 1909 में जब मदर्स डे मनाया जा रहा था तो सोनोरा का ध्यान अपने पिता के बलिदान की ओर गया और उन्होंने उसे एक सम्मानजनक रूप देने का फैसला किया। सोनोरा के पिता विलियम जैक्सन स्मार्ट के सम्मान में ही पहली बार 1910 में 19 जून को फादर्स डे मनाया गया क्योंकि इसी दिन विलियम का जन्म हुआ था। 1926 में न्यूयार्क में नेशनल फादर्स डे कमिटी का गठन हुआ जिसे 1956 में कांग्रेस में भी मान्यता दे दी गई। 1972 में राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने जून के तीसरे रविवार को फादर्स डे मनाए जाने का दिन तय कर दिया। उन्होंने इसके साथ ही कुछ ड्रेस कोड भी निर्धारित कर दिये। इसके मुताबिक यदि पिता जीवित हैं तो लाल रंग लेकिन यदि उनका निधन हो गया है तो सफेद रंग पहना जाएगा। साथ ही इस दिन गुलाब के फूलों का प्रयोग पिता के सम्मान में किया जाएगा। इस दिन बच्चे अपने पिता को उपहार और फूल देते हैं तथा कई प्रकार के खेल भी खेलते हैं। इस दिन न केवल पिता को बल्कि बच्चे की परवरिश में सहयोग देने वाले सभी पुरुषों के प्रति कृतज्ञता अर्पित की जाती है। पश्चिमी देशों से होते हुए यह संस्कृति भारत में भी पहुंची और यहां भी लोगों ने इस दिन को मनाना शुरू कर दिया। हालांकि अभी भी यह महानगरों में ज्यादा मनाया जाता है। वैसे जून के तीसरे रविवार को फादर्स डे मनाने का चलन केवल अमेरिका और कनाडा जैसे देशों में ही है जबकि दुनिया के बाकी हिस्सों में इसे मार्च, अगस्त, सितम्बर, नवम्बर और दिसम्बर में मनाया जाता है। आस्ट्रेलिया में सितम्बर के पहले रविवार को फादर्स डे मनाया जाता है जहां पिता के साथ भोजन करने की परंपरा है। इसी तरह ज्यादातर कैथोलिक देशों में 19 मार्च को फादर्स डे मनाया जाता है।

गौर कीजिए

अमेरिका में सत्तर के दशक में परिवार में पिता की भूमिका में बड़ा बदलाव आया।

मंजरी

स्त्री के मन की

पावरग्रिड
एक 'नवरत्न' कंपनी

COMFED
PRIDE OF BIHAR
Sudha

Hospito India

bansal
FOR CLASS : VI, VII, VIII, IX, X, XI & XII, IIT-JEE (MAINS & ADVANCED) & MEDICAL ASPIRANTS
TUTORIALS

केनरा बैंक
Canara Bank
Together We Can

THE OFFSETTERS (INDIA) PRIVATE LIMITED
design, pre-press and color offset printing

आप हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी equityasia@gmail.com पर ली जा सकती है।

मुख्य संपादक
नीना श्रीवास्तव

© इक्विटी फाउंडेशन